वैदिक धर्म
माघ-२००७
वर्ष ३२
अंक ३
मार्च १९५१
वैदिक धर्म
स्वाध्याय-मण्डल, किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

विषयानुक्रमणिका

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.
वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके लिये ६॥) रु.

'लय

के लिये

आवश्यकता है।

, स्वाध्याय मंडलने देश
प्रचारार्थ (वेद महा-
योजना बनाई है। गुरुकुलके
..। हिंदी, मराठी या गुजराती जान-
..गी व्यक्ति ही इसमें प्रवेश पा सकेंगे।
पाच वर्ष तक उन्हें निम्नलिखित विषयोंका अभ्यास करना होगा।

(१) वैदिक ग्रंथोंका पठन-पाठन-अर्थानुसंधान
(२) आरोग्य साधक योगसाधनका अभ्यास
(३) संपादनकला
(४) प्रवचन कला

विद्यार्थियोंको रहनेकी मुफ्त व्यवस्था की गई है। भोजन आदि खर्चके लिये रु० ५० मासिक स्कॉलरशिप मिलेगी। इच्छुक व्यक्ति प्रशंसा पत्रोंके साथ अपनी योग्यता आदिका विवरण लिख पत्र व्यवहार करें।

अध्यक्ष—
स्वाध्याय-मण्डल
किल्ला पारडी (जि० सूरत)

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय १ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश १॥) रु.
,, ३२ एक ईश्वरकी उपासना अर्थात् पुरुषमेध १॥) ,,
,, ३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय १॥) ,,
,, ४० आत्मज्ञान - ईशोपनिषद् १) ,,

डाक व्यय अलग रहेगा।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)

जनताका हित करनेवाला वीर

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यक् विचारीत्॥१॥

(ऋ० ७।२५।१)

हे (उग्र इन्द्र) शूर इन्द्र ! (यत समन्यवः सेनाः) जब उत्साही सेनायें (समरन्त) युद्ध करने लगती हैं, तब (मह नर्यस्य ते) मानवों के हित करनेवाले तुम जैसे महान् वीरकी (बाह्वोः दिद्युत्) बाहुओंसे धारण किये गये तेजस्वी शस्त्र (ऊती) हमारा संरक्षण करनेके लिये ही शत्रुओंपर (पताति) गिरा करते हैं, आघात किया करते हैं। इस समय (ते विष्वद्र्यक् मनः) तुम्हारा सर्वत्र विचरण करनेवाला मन भी (मा विचारीत्) इधर उधर नहीं भटकता। अपि तु वह शत्रुके नाश करनेके एकमात्र कर्तव्यमें संलग्न रहता है।

सेनायें जब युद्ध करनेका कार्य करती रहती हैं तब मानवका हित करनेके लिये लडनेवाले प्रत्येक वीरका लक्ष्य अपने शत्रुका पराभव पूर्णतः किस प्रकार किया जासकता है, इस कर्तव्यकी ओरही रहना चाहिये। उसे अपना सबकुछ दांवपर लगाकर शत्रुका पराभव करना चाहिये तथा अपना मन इधर उधर न जाने देना चाहिये।

बताया है।—

(१) संस्कृत-विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, तथा पाठशाला, ये चार विभाग हों।

(२) संस्कृत-परीक्षा तथा उपाधियोंकी समता निश्चित हों

(३) राज्यकी सभी प्रकारकी नौकरीयोंमें अमुक प्रतिशत संख्या संस्कृतज्ञोंके लिए सुरक्षित हो।

(४) संस्कृत विश्व-विद्यालयके उपकुलपति, महाविद्यालयों विद्यालयों एवं पाठशालाओंके प्रधान संस्कृतके प्रसिद्धतम विद्वान ही हों। संस्कृत परीक्षा विभागमें भी प्रधानपदासीन वे ही हों।

(५) (क) संस्कृत-परिषद् तथा (ख) संस्कृत-सभा स्थापित हों।

(६) डी. पी. आई. महोदयके एक सहायक संस्कृतके प्रौढ विद्वान् हों।
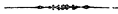
गणराज्य-भारतके अन्य कई राज्योंके समान बम्बई राज्यमें भी संस्कृत शिक्षामें अधिक व्यय करके संस्कृत विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय, पाठशालायें स्थापित या पुन्हा स्थापित की जाय। इस प्रसंगमें संस्कृत प्रधान ख्याति-केन्द्र यू. पी. बिहार तथा मद्रास इन तीनों राज्योंके साथ साथ बम्बई राज्यके शिक्षाव्यय (वार्षिक) संस्कृत शिक्षा-व्यय, तथा जन-संख्याका उल्लेख करना आवश्यक है।

काशीमें उत्तरप्रदेशीय सरकार जिस रूपसे संस्कृत विश्व-विद्यालय बनाने जा रही है वैसा ही एक विश्वविद्यालय हो।

काशी, बिहार तथा कलकत्ता पुरीमें जैसे संस्कृत महा-विद्यालय हैं, उनके समान बम्बई राज्यके प्रधान नगर बम्बई, अहमदाबाद, पूना आदिमें पृथक् पृथक् महाविद्यालय बनाये जायं। इनमें कमसे कम पन्द्रह पन्द्रह प्रकृष्ट अध्यापक हों। अध्यापकोंके वेतनोंके लिए काशीके संस्कृत महाविद्यालयका अनुकरण किया जा सकता है।

संस्कृतके लिये अन्य प्रान्तोंमें व्यय

राज्य,	जनसंख्या	वार्षिक-शिक्षाव्यय रु०	संस्कृतका व्यय रु०
उत्तरप्रदेश	५,५०,२०,६१७,	१०,७९,६२,०९१	२१,२६,३३४
बिहार	३,६३,४०,१५१	४,५८,२६,०३५	९,५६,८४९
मद्रास	४,९३,४१,२१०	४,५८,५५,४००	४,३३,४२३
मुंबई	३,०८,४९८४०	१२,००,००,०००	७५,०००

हरेक जिलेमें एक विद्यालय हो

इस लेखापत्रके अनुसार स्पष्ट है कि शीघ्र बंबई राज्य संस्कृतके लिये प्रचुर व्यय (वार्षिक) करना शुरू कर दे। संस्कृतमें बम्बई राज्यके द्वारा किये जानेवाले ७५ हजार रुपये व्ययमें ४१ हजार रु० सिर्फ बडोदा संस्कृत महा-विद्यालयका व्यय है और शेष ३४ हजार समग्र राज्यमें।

इस राज्यके उन्नीस जिलोंमेंसे प्रत्येकमें एक-एक विद्यालय स्थापित हो। इनमें कमसे कम पांच पांच अध्यापक हों, और मध्यमा आदि कक्षाओंके छात्र रखे जॉंये।

प्रथमाके अध्यापनार्थ कई पाठशालायें हों। इनमें कमसे कम दो दो अध्यापक हों। इनका सम्बन्ध तत्तत्स्थानीय

नगरपालिकाओं, (म्युनिसिपैलिटी) लोकल बोर्डों डिस्ट्रिक्ट बोर्डोंसे होना चाहिये। बिहार राज्यमें ऐसी पाठशालाओंकी संख्या सातसौसे ऊपर है।

राज्यमें किसी मण्डल या व्यक्तिके द्वारा यदि कोई महाविद्यालय, विद्यालय या पाठशालायें चलाई जाती हैं या चलाई जायं। उनकी प्रगतिका परीक्षण सरकारके द्वारा होकर तदनुरूप आर्थिक सहायता सरकारको देनी चाहिये, जिससे उस मण्डल या व्यक्तिका व्ययभार कमुतर हो जानेसे बड़ा उत्साह मिले। यू. पी. तथा बिहारमें ऐसी सहायता एक-एक विद्यालयमें जहां तीन या चार अध्यापक है, मासिक २५०, ३०० रु. है।

यू. पी. बिहार और बंबईमें फर्क

पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों की संख्या जहां यू. पी. और बिहारमें क्रमशः १४०० और १३०० है वहां सौराष्ट्र बम्बई नगरको लेकर-महागुजरातमें सिर्फ ५० विद्यालय या पाठशालायें हैं। महाराष्ट्र आदिकी संख्या ज्ञात नहीं।

इसी तरह जहां यू. पी और बिहारमें लगभग तेरह हजार संस्कृत-परीक्षार्थी होते हैं, वहां बम्बई राज्यके संस्कृत-परीक्षार्थियोंकी संख्या काशी तथा कलकत्ताकी प्रसिद्धतम परीक्षाओंके लिये एक हजारसे ऊपर प्रायः नहीं होती है।

१—संस्कृत परीक्षा तथा उपाधियोंकी समता।

परीक्षासे ही योग्यता होती है यह निश्चय नहीं है, फिर भी किसी भी भाषाके द्वारा पांडित्यलाभके लिये मापदण्डके रूपमें परीक्षा लेना आवश्यक है।

यू. पी. के शिक्षा सचिवने संस्कृतोन्नतिके लिये बहुत कुछ सोच रखा है। इस दिशामें वे बढ़ भी रहे हैं। उन्होंने यह भी सोचा है कि बी. ए. या एम्. ए. कोई पास होता है तो सामान्यतः अमुक रूपकी योग्यता उसकी समझी जाती है। किन्तु संस्कृतमें भारतके अन्य अन्य राज्योंमें अन्य-अन्य प्रकारकी उपाधियां हैं तथा उनमें किसीकी किसीके साथ समता नहीं है। अतः भारतके सभी राज्योंकी संस्कृत उपाधियोंमें तथा उनके पाठ्यक्रममें समता लायी जाय। साथ ही वहांकी सरकार यह भी सोचती है कि अमुक अमुक उपाधिको बी. ए. तथा एम्. ए. की समता दी जाय। तदनुसार संस्कृत परीक्षाओंमें पाठ्यक्रम निर्धारण किया जाना भी एक उद्देश्य है। अतः जिस परीक्षाको अंग्रेजीकी जिस परीक्षाके समान स्वीकार करना चाहते हों, उसके समान जनसेवा जनकार्योपयोगी पूरा पाठ्यक्रम निर्धारित हो, अन्यथा हम हास्यास्पद बने ही रहेंगे।

प्रथमासे मध्यमातक पांच या छः वर्षकी पढ़ाई हो। इसमें कक्षानुसार पहले सामान्य, पीछे विशेष रूपसे-इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थशास्त्र, विज्ञान आदिका समावेश अवश्य हो।

प्रतिवर्ष वर्गानुसार समाचारपत्रोंके आधारपर एक पेपरकी परीक्षा ली जाय। हम संस्कृतज्ञोंके लिये यह कार्य सभीसे मूल्यवान् होगा। समाचारपत्रोंके प्रति अनभिरुचिके कारण भी हम बहुत पीछे रह गये हैं, यह कार्य अति आवश्यक है।

२—प्रथमा, मध्यमा तथा इनके बादकी परीक्षाओंके लिये १९५१ ई. की काशी संस्कृत कालेजकी परीक्षाओंकी पाठ्यावलीका अनुकरण किया जा सकता है।

अध्यापकोंमें वृद्धि हो

इस प्रसंगमें एक और बड़े महत्वकी बात ध्यातव्य है, वह यह कि समस्त राज्यकी पाठशालाओंमें पांच या दस वर्ष तक-जबतक प्रत्येक विषयके वर्गानुसार प्रचुरतर संख्यामें अध्यापकोंकी वृद्धिके लिए बहुत प्रचुर व्यय करना नहीं सोचते हैं तबतक शास्त्री या आचार्य अथवा इसकी जगह कुछ अन्य नामावली परीक्षाओंके खण्डमें खण्ड-ग्रहणका स्वातन्त्र्य दिया जाय। जैसे शास्त्रीके दो खण्ड दो वर्षोंमें हों, तो प्रथम खण्ड बिना दिये हो पहले द्वितीय खण्ड ही छात्र देना चाहे तो यह अधिकार मिलना चाहिये। इससे अध्यापकोंके मुखसे अधिक समय छात्रोंको शिक्षा लाभके लिये मिलेगा। अभी तो विद्यालयोंमें एक दिनमें छात्रको अध्यापकोंसे पढ़नेका समय ३० से ४५ मिनट मिलता है। अध्यापकोंकी संख्या कम है, तथा वर्ग और पाठ्य अधिक हैं। तब छात्र योग्य कैसे होंगे?

इन परीक्षाओंके साथ शास्त्र-परीक्षाएं दो या चार ऐसी रखी जाय जिनको अंग्रेजी हाईस्कूलके लडके भी दे सकें। इससे यह महान लाभ होगा कि वे सभी संस्कृतसे प्रेम रखेंगे तथा अंग्रेजी और संस्कृतके ज्ञाताओंके बीच आज जो परस्पर अपरिचयका कूप बना है, मिट जायगा। अभी तो इन दोनोंमें एक तो दरियाके उस पार और दूसरे दूसरे पार है। उक्त शास्त्र-परीक्षाको पास करनेपर उन लडकोंकी भी अमुक प्रकारकी योग्यता स्वीकृत की जाय जिससे वह वर्गके साथ परीक्षाएं दें। परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रोंको वृत्ति देना (वर्ग तथा विषयानुसार पृथक् पृथक्) बहुत लाभदायक सिद्ध होता है, अतः छात्रोंके लिए (अमुक संख्यामें) वृत्ति तथा अध्यापकोंको पारितोषिक देनेकी भी व्यवस्था रहे।

३— राज्यकी नौकरियोंमें प्रतिशत संख्या निर्धारण।

परीक्षाके पाठ्यग्रंथ जब हम दृढताके साथ अमुक उच्च कोटिके तथा जनसेवोपयोगी निर्धारित कर लेंगे, तो समिति को चाहिए कि राज्यकी छोटीसे छोटी तथा बडीसे बडी नौकरियोंमें प्रतिशत अमुक संख्या केवल संस्कृतज्ञोंके लिए सुरक्षित रखनेके लिए सरकारसे शिफारिश करे। अन्यथा अंग्रेजीवालोंके साथ कहीं किसी नौकरीपर आजकी वासनाके आधारपर संस्कृतज्ञोंको कमजोर समझकर सभी छांट निकालेंगे। हां-यह नियम परिमित वर्षोंके ही लिए भले हो, किन्तु होना आवश्यक है। पश्चात् हम संस्कृतज्ञ स्वयं कर्त्तव्यपालनकी दक्षता प्राप्त करेंगे; पहले अवसर तो देना चाहिए। इस उत्साहसे शीघ्र हम आगे अवश्य बढेंगे।

४—प्रधान पद।

दुर्भाग्यवश भारतीयोंको अंग्रेज कहते रहे कि शासन सूत्र चलानेमें अभी वे समर्थ नहीं हैं, किन्तु आज हम भारतीय किस योग्यतासे सभी तंत्रोंको चला रहे हैं यह विश्व जानता है। ठीक वही आघात हम संस्कृतज्ञोंपर है। चाहिए यह कि स्थापयिष्यमाण संस्कृत विश्वविद्यालयके उपकुलपति, महाविद्यालयके प्रधान आदि सभी पदोंमें संस्कृतज्ञोंको आसीन करें। बिहार सरकार पहले अंग्रेजी तथा संस्कृत दोनोंके ज्ञाताको गवर्नमेंट संस्कृत कालेजके प्रधान बनाती थी, पर आज वहां शुद्ध संस्कृतज्ञको प्रधान बना दिया है और वे अच्छी तरह कार्य करते हैं। ऐसा नहीं होनेसे आत्मविश्वासके लिए हमें बडा लम्बा समय लगेगा।

५— संस्कृत परिषद् तथा संस्कृत सभा।

एक संस्कृत परिषद् बनायी जाय। इसमें अमुक संख्यामें सदस्य हों। उनके चुननेवालोंकी योग्यताएं निश्चित हों। प्रति जिलेसे अमुक संख्यामें सदस्य चुने जांय सम्पूर्ण संख्या सरकारकी तरफसे संस्कृत रसिकोंकी हो। यही परिषद् वर्षमें दो या एक बार अपने अधिवेशनमें मूक सिद्धांताविरोधेन पाठ्यावलीका निर्धारण तथा संस्कृत एवं संस्कृतज्ञोंके हितकी बात उपस्थित करे।

६— संस्कृत सभा।

संस्कृत परिषद्के द्वारा चार अंशोंमें तीन-चतुर्थांश सदस्योंका चुनाव हो, शेष एक-चतुर्थांश सरकारकी ओरसे सम्मिलित किये जानेके बाद इन सभी सदस्योंकी एक सभा (काउन्सिल) हो। परिषद्की उपस्थापित बातोंको अस्वीकार या स्वीकार कर सरकारको सौंपनेका इसे हक है। यह सभा संस्कृतके लिए सर्वसत्तासम्पन्न मानी जाय। इसका अधिवेशन वर्षमें दो बार अवश्य हो और आवश्यकतावश मध्य-मध्यमें भी हुआ करे। इसमें बिहारके एजुकेशन कोडसे सहायता ली जा सकती है।

७— श्री डी. पी. आई. महोदयके सहायक संस्कृतज्ञ।

श्री डी. पी. आई. महोदयके सहायक एक संस्कृतज्ञ रहें। वे खासकर राज्यके संस्कृत अंगका न्यूनन वर्द्धन, परिवर्तन आदिकी बात सोचा करेंगे। ऐसा होनेपर डी. पी. आई. महोदय हमें आगे बढानेमें अधिक शीघ्र सफल होंगे।

(मराठासे)

श्री अरविन्दका महाप्रयाण

लेखक— डॉ० इन्द्रसेन, संपादक ' अदिति '

साधकके लिये गुरुदेव उनके सर्वस्व होते हैं, भगवान्‌के साक्षात प्रतिनिधि तथा स्थानापन्न होते हैं। उन्हींकी शिक्षा-दीक्षा और सहायता-कृपासे वह अपने बंधनोंसे मुक्त होता है तथा आत्मा-लाभ करता है। उनसे वह ऐसा प्रेम अनुभव करता है जो वह संसार भरमें किसी अन्यसे नहीं करता। स्वभावतः साधकके लिये साधकावस्थामें गुरुका बिछोहा दूभर हो जायगा।

श्री अरविन्दके शरीर छोड देनेका प्रथम समाचार साधक-वर्ग तथा सामान्य जनताके लिये समान रूपमें भारी धक्का था। यह बात किसीकी कल्पनामें भी न थी, अतः इसे सुनकर प्रथम तो विश्वास ही नहीं हुआ' जब तक भावोंका क्षोभ जरा शांत नहीं हो गया तब तक वे इसे तथ्य रूपमें स्वीकार करनेमें भी समर्थ नहीं हो पाए। जब लाचार होकर तथ्य मानना पडा तब हृदय और बुद्धि व्यग्रता पूर्वक पूछने लगे कि आखिर यह हुआ क्यों और कैसे ?

जनताने सामान्य रूपमें देश और जातिके एक महान् नेता तथा ऋषि और योगीके देहावसान पर दुःख अनुभव किया तथा उनके जीवन तथा कार्यका स्मरण करके अपना और देशका गौरव माना। और प्रत्यक्ष ही श्री अरविन्द की देन अत्यंत महान् है। उनका जीवन संसारके इतिहास में महान् आदर्श, सेवा ' त्याग, तपस्या विद्वत्ता तथा आध्यात्मिक सिद्धि और प्रभावके कारण विशेष उच्च स्थान रखता है। उनके ग्रंथ भी सामान्य बौद्धिक रचना नहीं हैं। वे सब आध्यात्मिक अनुभवकी उपज हैं और उन्होंने अपूर्व रूपमें भारतीय संस्कृतिको हमारे लिये पुनरुज्जीवित कर दिया है। आजके समयमें उनके व्यक्तित्व तथा ग्रंथोंसे देश तथा संसारमें जो आध्यात्मिक जिज्ञासा प्रसारित हुई है वह भारत तथा संसारके लिये विशेष महत्त्वकी वस्तु है। जनता ने श्री अरविन्दके इस सब विस्तृत कार्य तथा प्रभावका चिंतन कर उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है और दिवंगत आत्माके लिये मंगलकामना की है।

परंतु साधकवर्ग तथा वे जो श्रीअरविन्दके विशेष आध्यात्मिक ध्येय तथा कार्यसे परिचित हैं श्री अरविन्दके देहावसानमें एक विकट समस्या अनुभव करते हैं। वे महसूस करते हैं कि श्री अरविन्द अपनी मुक्ति मात्रके लिये साधना नहीं कर रहे थे। अपने साधकोंकी मुक्ति भी उनका लक्ष्य नहीं था। उन्होंने तो स्पष्ट रूपमें अनुभव किया था कि मनसे उच्चतर एक अतिमानस तत्त्व है जो पृथ्वी स्तर पर अनिवार्य रूपमें प्रकट होना है। वे बतलाते हैं कि जड, प्राण और मनके विकास-क्रमकी स्वाभाविक परिपूर्ति अतिमानसमें होगी। मन अत्यंत अपूर्ण वस्तु है। वह मानवकी सामान्य चेतनाका अंतिम रूप नहीं हो सकता। पशुओंकी चेतनासे वर्तमान मानव--चेतना विकसित-तर है। परंतु यह भी वस्तुओंके बाह्य रूपोंको ही ग्रहण करनेमें समर्थ होती है। सत्यको साक्षात् रूपमें अनुभव करनेवाली पूर्णतर चेतना मानवका स्वाभाविक ध्येय और लक्ष्य है और पृथ्वी स्तर पर मानव चेतनामें एकदिन चरितार्थ होनी चाहिये। श्री अरविन्द यह भी बतलाते थे कि यह चेतना योगकी प्रगाढ एकाग्रता द्वारा शीघ्रतर भी सिद्ध की जा सकती है। यही वास्तवमें उनका ध्येय था। इस ध्येयको वे अपने जीवन कालमें ही पूर्ण करनेकी आशा रखते थे। इस संबंधमें उन्होंने दो एक अपने पत्रोंमें काफी रूपमें स्पष्ट कहा है कि यह कार्य अभी पूरा होना है।

इस प्रकारके कुछ एक प्रकरणोंके आधार पर श्रीअर-विंदके आध्यात्मिक अनुयायियोंने यह आशा बना ली थी

कि जबतक उनका काम पूरा नहीं होता तब श्री अरविन्द निश्चित रूपसे उनके बीच उपस्थित रहेंगे। इसके अतिरिक्त अतिमानसकी शक्तिसे वैसे भी व्यक्ति को "यथा इच्छा जीवन काल" प्राप्त हो जाता है। अतः इन अनुयायियोंने श्रीअरविन्दके देहावसान पर विशेष धक्का अनुभव किया। वे गंभीर रूपमें सोचने लगे, यह क्यों हुआ और कैसे हुआ ?

श्री अरविन्दने अतिमानस, इसके अवतरण, तथा अवतरणके मार्गकी कठिनाइयों तथा विघ्न बाधाओंकी निष्पक्ष भावमें वैज्ञानिक शैलीसे व्याख्या की है। अतिमानसकी सत्ता तथा इसके अवतरणकी अवश्यम्भाविताके बारेमें उन्होंने पूर्ण निश्चयसे किया है। परंतु अवतरणके लिये कभी तारीख नहीं बांधी थी क्योंकि उसके लिये अनेक अवस्थाओंकी अनुकूलता चाहिये।

अतिमानसके संबंधमें वे कहते हैं कि "मैं इसे (अतिमानसको) ऊपरसे अपनी चेतना पर प्रकाशित होते लगातार अनुभव करता हूं और मैं यही यत्न कर रहा हूं कि उपयुक्त अवस्थाएं पैदा की जायं जिससे पूर्ण व्यक्तित्वको अपनी स्वाभाविक शक्तिके प्रभावमें ले ले" (Letters of Shri Aurobindo II P. 12.)। यही उनका परम करणीय कर्म बन गया था अतिमानसको मानव मन प्राणके और शरीरमें अवतरित करना और इस अवतरण द्वारा उन्हें रूपांतरित करना ही उनके आध्यात्मिक कार्यका लक्ष्य था। आरोहण द्वारा भगवान् तथा आत्माकी प्राप्ति खूब ऊंचे आध्यात्मिक लक्ष्य हैं, परंतु उनका कहना था कि इससे मानवको अपने संपूर्ण जीवनमें भगवान्‌का स्पर्श प्राप्त नहीं होता। जबतक व्यक्तित्वके सभी अंगोंका दिव्यीकरण न किया जाय, निम्न प्रकृति उच्च प्रकृतिमें परिवर्तित न हो जाय तबतक मानवका भगवान्‌के साथ पूर्ण मिलन, जैसा समाधि तथा चिंतनमें वैसा ही कर्म तथा व्यवहारमें सिद्ध नहीं होता। यह सिद्धि तभी हो सकती है जब कि अतिमानस तत्वकी शक्तिको हम अपने शरीरके भौतिक तत्व तकमें उतार लायं और फिर उसीसे अपने विचार-विचारमें तथा किया-क्रियामें अनुप्राणित हों।

इस अवतरणकी प्रक्रियाके बारेमें श्रीअरविन्दने खूब विस्तारसे किया है। एक जगह वे बतलाते हैं कि "यह अवतरण अपने आपमें कुछ उच्छृंखल तथा मौजकेकी चीज नहीं। यह एक गतिशील, कुछ एक वर्षोंमें सीमित, विकास प्रक्रिया है जो वर्तमान प्रकृतिको अपने प्रकाशमें ग्रहण करके इसके निम्न स्तरोंमें अपने सत्यको अंकेक देती है। यह कार्य सारे जगत् पर एकदम नहीं किया जा सकता, बल्कि अन्य ऐसे कर्मोंकी तरह यह पहले कुछ चुने हुए आधारोंमें करना होता है और फिर उसे विस्तृत किया जाता है। हमें (श्रीअरविन्द और माताजी) पहले यह अपने ऊपर करना है और फिर पार्थिव चेतनाके प्रतिनिधि रूप उन साधकों पर जो हमारे पास एकत्र है। (Dab Me 3)

श्रीअरविन्द इस कार्यकी कठिनाइयों तथा अनेक प्रकारकी विघ्न बाधाओंको बार बार जतला देते रहे हैं। शरीरके भौतिक भागमें प्रकाश पहुंचाना वे हमेशा विशेष कठिन बतलाते थे। एक जगह उन्होंने कहा है कि "अचेतनमें प्रकाश पहुंचाना महा कठिन काम है"। परंतु यह काम किये बिना प्रकृतिका रूपांतर संभव नहीं। वास्तवमें मन और प्राणके क्षेत्र पार होकर उनकी साधना अर्सेसे जड भौतिक तत्वसे संघर्ष ले रही थी। यह एक अत्यंत मार्मिक स्थिति थी और इसे अधिकृत करनेमें ही श्रीअरविन्दने अपने जीवनकी बलि दी है।

श्रीअरविन्दके जीवनकी मार्मिक गती उनका आध्यात्मिक अथवा गुह्यवाद था। वे घटनाओंके धोखेमें नहीं आते थे। वे जानते थे कि जगत्‌की सब घटनाओंके कारण सूक्ष्म चेतन जगत्‌की गतियां-प्रगतियां होते हैं। वे फिर सीधे उन्हीं पर क्रिया किया करते थे। अपने जीवन कालमें उनका प्रधान कार्य विशेष कर जबसे उन्होंने अपना आध्यात्मिक कार्य शुरु किया, ऐसा गुप्त और गुह्य ही रहा है। वास्तवमें जैसे उनका जीवनका मर्म गुप्त और गुह्य था वैसे ही उनके महाप्रयाणका मर्म भी गुप्त और गुह्य है। बीमारी तो स्वयं गुह्य आध्यात्मिक संघर्षका एक परिणाम है यह उनके महाप्रयाणका कारण नहीं।

उनका महाप्रयाण अवश्य ही अचेतनमें अतिमानसिक प्रकाशके अवतरण-संबंधी एक अभिनव घटना थी, यह

मानव-रूपांतरके महान् आदर्शके लिये बलि थी तथा अतिमानसके दिव्यतत्त्वके लिये बलिदान था। इसके अतिरिक्त उनके प्रयाणका दूसरा अर्थ हो नहीं सकता। उनका सारा जीवन ही गंभीर आध्यात्मिक यज्ञ तथा आत्म निवेदन था, महाप्रयाण का महा कर्म केवल परम आत्म-निवेदन ही हो सकता है।

परंतु क्या इस आत्म निवेदनसे अतिमानसके अवतरण-का कार्य रुक जायगा या धीमा पड जायगा ? यदि मृत्यु सामान्यतया भी जीवनका अंत नहीं होती बल्कि नए और अधिक विकसित जीवनका साधन होती है, तो श्रीअरविन्द जैसे आत्मवेत्ताके लिये तो यह किसी तरह भी बाधा या रुकावट नहीं बन सकती। बल्कि शरीर पर अतिमानसके एक प्रयोगसे जो अनुभव प्राप्त हुआ वह भावी कार्यके लिये जरूर ही सहायक होगा। और क्या पता यह अनुभव भावी कार्य लिये शायद अनिवार्य हो गया था।

यह हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यदि श्रीअरविन्द अब भी वही श्रीअरविन्द हैं जो वे जीवन भर रहे हैं और यह आत्माके अमरत्वसे होना अनिवार्य है तो वे अपने ध्येयकी चरितार्थताके लिये अब भी जरूर यत्नशील हैं। और उनके यत्नके लिये उपयुक्त क्षेत्र भी उनका अपना आश्रम ही हो सकता है जहां उन्होंने इतने लंबे अर्से तक आधारों पर परिश्रम किया है। ऐसा होना इस कारण और भी जरूरी है क्योंकि श्रीमाताजी, जिन्होंने जीवन भर उनके साथ उसी ध्येयके लिये काम किया है उसका अब भी पथ-प्रदर्शन कर रही हैं तथा श्रीअरविंदके अतिरिक्त वे दूसरा आधार हैं जिसमें अतिमानसका अवतरण प्रथम रूपमें संभव माना गया था। अवश्य ही श्रीअरविन्द आत्मा-रूपमें अपने आश्रममें अब भी विराजमान हैं। माताजीने स्पष्ट ही कहा हैं " श्रीअरविन्द (अब भी) यहां हमारे साथ हैं, सचेतन और सजीव "।

अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम उनके साथ सजग आत्मिक संबंध जोडें, उनसे पथ-प्रदर्शन प्राप्त करें और उस पथ प्रदर्शनका दृढता और सचाईके साथ अनु-सरण करें जबतक वह महान् दिव्य तत्त्व, वह अतिमानस, मानव-चेतनामें प्रतिष्ठित न हो जाय।

-※××※-

संस्कृत भाषा प्रचार समिति–विवरण

स्वाध्यायमण्डलकी संस्कृतभाषा परीक्षाओंका संगठित रूपसे संचालन होनेके लिये स्थान स्थानपर " संस्कृत भाषाप्रचार-समिति " यों की स्थापना हुई है। केन्द्र व्यवस्थापकों द्वारा इस प्रकार व्यवस्थित रूपसे इस कार्यको आरम्भ कर देनेके लिये हम उन्हें हार्दिक बधाई देते है,

जिन स्थानोंपर समितियाँ स्थापित हुई हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है—

बडौदा केन्द्र

१– श्री कान्तिलालजी गिरधरलालजी शाह (केन्द्र व्यवस्थापक)

२– श्री प्रो० गोविन्दलालजी ह, भट्ट संस्कृत प्रोफेसर बडौदा कॉलेज

३– ,, नानालालजी एन. शाह, प्रिंसिपाल ऑफ मेमोरियल हाईस्कूल

४– ,, द्वारकादासजी जे. न. पटेल प्रिंसिपल शारदा मन्दिर हाईस्कूल

५– ,, भवानी शंकरजी गिरिजा शंकरजी शास्त्री छुहाणा बोर्डिंग

६– ,, पं० चन्द्रमणिजी आर्य कुमार आश्रम, कारेलीबाग

७– श्रीमती सुशीलाबेन पण्डित मुख्याधिष्ठात्रीजी आर्य कन्या महाविद्यालय

८-- श्रीमती सरलाबेन वीरजीबंगडिया M. A. B. T. महाराणी गर्ल्स हाईस्कूल

आकोला केन्द्र

१-- श्री कृ० क० खांबोरकर मुख्याध्यापक न्यूएरा हाई-स्कूल (केन्द्र व्यवस्थापक)
२-- ,, जी० डी० जोशी प्रिंसिपल सीताबाई आर्ट्स कॉलेज (अध्यक्ष)
३-- ,, वी० ह० पण्डित बी० ए० बी० टी० (मन्त्री)
४-- ,, ना० मो० व्यासजी
५-- ,, व्ही० ढव्ल्यू फडके मुख्याध्यापक मनुताई कन्याशाला
६-- ,, जी० एस् चौधरी B. SC. B.T. मुख्याध्यापक यूनियन हाईस्कूल
७-- ,, प्रो० सुरकुटे सीताबाई आर्ट्स कॉलेज
८-- ,, डी० एच् बढे B. SC. BT. मुख्याध्यापक शिवाजी हाईस्कूल
९-- ,, विष्णू त्रिंबक दीक्षित (कार्यवाह-विदर्भ विभाग)

नगीना केन्द्र (जि० बिजनौर)

१-- श्री अग्रसेनजी विशारद (केन्द्रव्यवस्थापक)
२-- ,, रामचरणजी पाण्डे संस्कृत प्राध्यापक हिन्दू-महाविद्यालय
३-- ,, रामचन्द्रसहायजी वकील प्रधान आर्यसमाज
४-- ,, विष्णुदत्तजी (प्रचारक)
५-- ,, राम औतारजी गर्ग

फतेहपुर केन्द्र (जि० बाराबंकी)

१-- श्री विन्ध्येश्वरी प्रसादजी मिश्र आचार्य (केन्द्र व्यवस्थापक)
२-- ,, गिरिजाशंकरजी मिश्र (प्रधान मन्त्री)
३-- ,, शंकरनाथजी मिश्र शास्त्री
४-- ,, गिरिजादत्तजी मिश्र वैद्य
५-- ,, गंगाप्रसादजी दीक्षित अध्यापक
६-- ,, जगन्नाथ प्रसादजी वर्मा

बलसाड केन्द्र (जि० सूरत)

१ - श्री. गजानन नरहरिशंकर शास्त्री (केन्द्र व्यव-स्थापक)
२-- ,, मुकुन्दरायजी पंड्या (प्रमुख)
३-- ,, कीकुभाई र० देसाई (मन्त्री)
४-- ,, छगनलाल डी० भावसार
५-- ,, मनसुखलाल डी० त्रिवेदी
६-- ,, भगवानदास र० मिस्त्री
७-- ,, दिनमणीशंकर म० भट्ट
८-- ,, नवनीतलाल म० भट्ट
९-- ,, परागजी नी० देसाई

पटना केन्द्र

१-- श्री. रामवचन द्विवेदी ' अरविन्द ' साहित्यालङ्कार
२-- ,, पं लक्ष्मी नारायणजी शास्त्री
३-- ,, ,, श्रुतिदेवजी शर्मा प्राध्यापक
४-- ,, ,, देवदत्तजी त्रिपाठी व्याकरणाचार्य
५-- ,, ,, श्री देव मिश्रजी व्याकरणतीर्थ
६-- ,, ,, कपिलेश्वर शास्त्री प्रधानाध्यापक सं. विद्यालय

कपडवणज केन्द्र (जि० खेडा)

१-- श्री विमलकान्तजी केशवलालजी त्रिवेदी (केन्द्र व्यवस्थापक)
२-- ,, चिमनलालजी के. जोशी एम० ए० बी० टी
३-- ,, मधुसूदनजी पुरुषोत्तमजी त्रिवेदी (सहमन्त्री)
४-- ,, शिवप्रसादजी म० पुराणी बी० ए० बी० टी०
५-- ,, प्रद्युम्नभाई सी० त्रिवेदी एम० ए० एल् एल् बी.
६ - ,, माधवलालजी भू० त्रिवेदी आचार्य

इन स्थानोंके अतिरिक्त, अबलपुर कल्याण, पंढरपुर, काश्मीर चान्दोद, खामगांव आदि स्थानोंमें भी प्रचार समितियोंकी स्थापना हुई हैं । साथ ही अनेक स्थानोंमें समितियाँ स्थापन करनेका प्रयत्न हो रहा है। केन्द्र व्यवस्थापकोंने सूचित किया है कि शीघ्र ही हमारे यहाँ संस्कृतभाषा-प्रचार समितिकी स्थापना होगी ।

सुविधानुसार हम उनकी सूचनायें प्रकाशित करते रहेंगे।

परीक्षा मन्त्री

प्राक्कथन

जिसने विपत्ति के बादलों में जन्म लिया एवं मुगल बादशाहके आतङ्क के कारण योग्य स्वामीभक्तोंकी दूर दर्शिता से शैशव व युवावस्थाके प्रारम्भिक १८ वर्ष वनोपवन एवं पर्वतमालाओंमें विताये, तदनन्तर शक्तिसम्पन्न हो अपने पूज्य पिता श्री यशवन्तसिंहजीकी यशस्विनी तलवार झेलकर दिल्लीके तख्तको चकनाचूर कर दिया, जो तीन तीन मुगलबादशाहोंका भाग्य विधाता बना रहा एवं १६ वर्ष तक जिसने "भारतीय-राजनैतिक-चक्र" का संचालन किया उन्ही महाराज श्री अजीतसिंहजी द्वारा दिल्लीसे तख्तको पलटनेके बाद सं० १७७५ में स्वतन्त्रताके परम पुजारी श्री छत्रपति महाराज शिवाजीके पौत्र छत्रपति महाराजशाहूको यह पत्र भेजा गया था।

हमारे पूर्वज "भट्ट शिवजी" राजपण्डित होनेके कारण दिल्लीमें महाराजाके साथ ही थे, अतः पत्रकी मूलप्रतिलिपि (Office Copy) हमारे पुस्तक संग्रहालयमें है।

यह पत्र उस समयकी भारतीय- राजनैतिक परिस्थिति पर गहरा प्रकाश डालता है. अतः इसका हिन्दी व अंग्रेजी अनुवाद भी साथ में दिया जाता है।

फा० शु० १४
वि० सं० २००६

शिवम्—
कविभट्ट— श्यामसुन्दर बदरीनाथ शर्मा.

संस्कृते

मूल—पत्रम्

श्री परमेश्वरो विजयते तराम् ॥

श्रीहिंगुला। श्री राम राम स्मरण निवेद (न) पूर्वकोऽयं वर्णनिकरदूतो निवेदयति-

स्वस्ति श्री मद मेदुर मन्दाकिनी मधुरतर तरंगधारा-निरन्तर सीकर संसिक्त मदरा (मंदार) कुसुम निष्यन्दित-मकरन्द बिन्दु सन्दोह-सोदर-सदय हृदय शेषशायि चरण स्मरण रसिकेषु।

श्रीमद्विशद यशोराशिचन्द्र-चन्द्रिका विकसत-सरोजिनी राजित-भगवत्पदद्वन्द्व-निर्द्वन्द्व धर्मादि-पुमर्थ-सार्थकीकृत-निजवंशावतारेषु।

प्रतिभटकटक-विजययात्राऽवसर-जैत्र-भुजभुजङ्ग जिह्वायमान महाकृष्ट कोदण्ड-बह्वासादित-शरकाण्ड ताण्डवखण्डिता-ऽराति मण्डलेषु।

सतत—वितन्यमान-पद्मालया देदीप्य-मान-श्रीमद् छत्रपति महाराज 'शाहु' श्री क्षत्रियधुरन्धरेषु।

श्रीमद्—भवदीय-प्रेमगीर्वाणार्णव-पूर-मज्जनोत्सुकित श्री छत्रपति राजराजेश्वर श्री महाराज 'अजीतसिंह' प्रेषित पुरस्सरा पात्रिकेयम्।

श्रीमद् देवाधिदेव सेवित पादाम्बुजायाः......प्रसादाद् भव्य-मिह वरीवर्ति, श्रीमदीयं तद् अनुदिनम् अव्याहतम् ईहामहेतराम्

श्रीमतां पत्रं समायातम् अभिप्रायोऽवगतः, सानन्दाः जाताः। श्रीमदावयोरैक्य व्यवहारं श्रीमद्भवज्जनमुखेभ्यो मामिकी-हितैषिणी वार्ता श्रवणात् स्मारं हृदयानन्द-वृन्दं समुत्पन्नम्। श्रीमाद्भि-र्लिपीकृतं-नवाब कुतुबुन्मुलकेन साहाय्यमतीवाऽकारि। कृतं कर्तु-मिष्यते चेति, तत्तु मैत्रीवशाद् दुष्करमपि सुकरम्, उक्तं च- "मित्रलाभ मनुलाभसंपदः" एतल्लेखनाद् वयं ब्रह्मानन्दनिर्भराः जाताः। यूयं सारासार विचारज्ञाः। पुनरपि अस्माकं द्वयोर्भ्रात्रोः प्रत्यहं स्नेह संवर्धिष्णुता श्रीमद्भिरपि स्नेह संवर्धिष्णुता रक्षणीया। श्रीमाद्भिः पुनरपि पण्डित बालाजी प्रमुखा सेनाधुरीणाः 'अमीरल उबराय' साद् विधाय प्रेषिताः, तैः समागत्य श्रीमत्संबंधिनीः सर्वाः वार्ताः कृताः श्रुताः प्रचुरानन्दता जाता। पुनस्ततः उक्तम् एतत्-कार्यं सम्यक्तया सम्पाद्य अस्माकं प्रयोजन-सिद्धिःप्रेषणीया। तस्माद् अत्रत्यं वृत्तम् पूर्वम् सार्वभौमेन (बादशाह फर्रुखसीयर) अस्मान् आहूय पूर्वम् मनोगतं वृत्तं नोक्तम्। पश्चाद् कैश्चिद् वराकैः संमिल्य प्रभूत दंभता कृता, धृता अग्रेऽपि द्वयो-र्भ्रात्रोः सार्वभौमस्य धूर्तता वृद्धिः। तदऽस्माभिः कुतुबुन्मुल्का-"मन्त्रः कृतः, अमीरल उबरायं प्रति लिपिकृतं- भवाद्भिः त्वरयैवा-ऽत्रागन्तव्यम्। फाल्गुनकृष्ण चतुर्दश्यां शीघ्रतया [सः] समायातः तदऽस्माभिरिदं निश्चयीकृतम् अयं सार्वभौमा [बादशाह]

सनयोम्योनाऽस्ति, अस्याऽदन्नकापर्व्यं नीचैः सह मैत्री, तस्मादेनं उत्थाप्य प्राचीन सार्वभौमवंशोऽन्यः स्थापनीयः। तदा फाल्गुन शुक्ल ६ म्यां दुर्गमध्ये संरुध्य फा॰शु॰ १० बुधे कारागारे स्थापयित्वा रफीयलदरस्य सुतः रफीयलपरआतः कारागारां निष्काश्य सार्व-भौमासने स्थापितः अष्टादश वर्ष परिमितोऽस्ति। श्री श्रीजी प्रतापात् समस्त हिन्दूकानां जेजीयामोचनं, समस्त तीर्थानां करमोचनं कृतम्। अनयोकार्यद्वयोर्मेद्वानन्दः कार्यः। ईश्वरेच्छया श्रीमदभीष्टं जातम्। पुनरपि श्रीमद्भिर्लिपीकृतम्-अस्मान् अंश भागिनः करिष्यन्त्येवासिन् कृत्ये। सत्यमेतत् अस्माभिर्यानि गुरूणि कार्याणि कृतानि, क्रियन्ते कर्तुमिष्यन्ते चेति तेषु यूयं-धामवन्तः, मद्धितैषिणः पुरस्सराः। वयं गुर्जर ...... देशे समागमिष्यामः तत्राऽगत्य-परमाश्लेष सन्तोषजनकं मनोगत वृत्तं लेखयिष्यामः। एको गजः वस्त्राणि अष्टादश [पोशाक] कट्टारिका [कटारी] एकारत्न-जटिता, पं॰ मल्हारशंकरजी पं॰ बालाजी-करे प्रेषितानि। एतत् किं वस्तु, का गणना? एतेषु वस्तुषु दृष्टिपथं गतेषु अस्माकं मैत्री-स्मरण-वृद्धिताऽवगन्तव्या। अन्यद् रहस्यं पं॰ मल्हारशंकरजी पं॰ बालाजी मुखाद् अवगन्तव्यम्। इह प्रत्यहं बह्वानन्दः, रक्षणीयः पुनर्निजकुशलपत्र प्रेषणेन। पारस्परिक व्यवहार संरक्षणम् उचितमेव महात्मनाम्।

किं बहु उक्तेन बहुज्ञेषु।

श्रीरामजी

सहर्षता—

विशेषस्तु-प्राचीन सार्वभौम धूर्त [बादशाह फर्रुखसीयर] राज्यासनादुत्थाप्य प्राचीन सार्वभौम वंशोद्भवं तदासने स्थिरी-कृत्य माघ शुक्ल [ज्येष्ठ] कृष्णैकादश्याम् एतानि वस्तूनि गृहित्वा स्व देशं वा गुर्जरदेशं प्रति प्रस्थानम् इति अस्माकं प्रयाणाम्-एक संमतम्

वस्तूनां नामानि-अम्बराणि, अश्वश्चैकः रत्नजटितोपस्कर संयुक्तः, मुक्ताफल-मालिका एका सार्वभौमेन स्वहस्ताभ्यां उरसि धृता [परिधापिता] तथा च कर्णयोर्मुक्ताफल चतुष्टयम् वरत्नम् उष्णीष भूषणं महर्घ्यम् मध्ये रत्न संयुक्तम् लोक भाषायां 'सिरपेच' इति तदपि स्व हस्ताभ्यां धृतम् [परिधापितम्] द्वितीयम् उष्णीष-भूषणं रत्नजटितं तदपि स्व हस्तेन शिरसि निवेशितम् लोकभाषायां 'किलंगी' इति प्रसिद्धम्, पुनरपि खड्ग-श्चैको रत्नजटितः तथा कट्टारिका (कटारी) एका रत्नजटिता, चर्म (ढाल) चैकम्, रजत मुद्रिका नवलक्ष परिमिताः, एको गजः करिणी संयुक्तः, 'मुरातब तुं माग तोगः, अतिश्रेष्ठः सर्वेषां राजचिन्हानां मध्ये स्तवन योग्यः, एतानि वस्तूनि स्वीकृतवन्तः। श्रीमद्भिर्बह्वानन्दः कार्यः स्वराजधानीं समागत्य बह्वानन्द जनकं पत्रं त्वरया लिखामः, तथा च अन्यद् वृत्तं श्रीमन् मामकीनाऽनुचर-हस्तगत-पत्र दूतात् सर्वं रहस्यं वृत्तं विदित्वा प्रचुर हर्षता विधेया। किं बहु लिखने उक्तेन बहुज्ञेषु।

संवत् पञ्चर्षि सप्त भूवर्षे (१७७५) शुक्र [ज्येष्ठ] मासे शुद्ध [शुक्ल] पक्षे विरिंचि (२) तिथौ भास्कर वासरे लिखित-मदः पत्रम्।

७४॥ श्रीमद्राजाधिराज 'शाहु' क्षत्रिय धुरन्धरेषु प्रेषतेयं पत्रिका- श्रीमद्राजाधिराज 'शाहु' स्वीय कुलावतंसेभ्यः... पत्रिका।

७४ छत्रपति महाराज श्री 'शाहु' क्षत्रिय धुरन्धरेषु प्रेषितोऽयं वर्णदूतः।

हिन्दी-अनुवाद

श्री परमेश्वरो विजयते तराम्॥

श्री हिंगुला श्री रामराम स्मरण पूर्वक यह वर्णमाला रूपी दूत निवेदन करता है कि स्वस्ति श्री मद से परिपुष्ट श्रीगङ्गाजीकी मधुर तरंग माला से उठे हुए कणोंसे सींचे गये मन्दार [कल्पवृक्ष] के पुष्पोंसे निकले रसकी तरह कोमल हृदयवाले एवं भगवच्चरण कमलके स्मरण करनेमें रसिक। तथा—

विशद यश रूपी चांदनीसे खिली हुई कमलिनीसे सुशोभित भगवच्चरणोंकी कृपासे निर्विघ्न धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके सेवनसे अपने कुलको सार्थक करनेवाले। तथा--

शत्रुओंके कटक विजय यात्राके अवसर पर विजयशील भुजा रूपी भुजङ्गोंकी जीभकी तरह लपलपाते हुए धनुषसे निकले हुए बाणोंसे शत्रु मण्डलको खंडित [भेदन] करनेवाले। तथा--

विस्तृत लक्ष्मी [वैभव] से देदीप्यमान श्रीयुत छत्रपति महाराजा क्षत्रिय शिरोमणि 'शाहु' की सेवामें आपकी प्रेमभरी वाणीके समुद्रमें गोता लगाने वाले छत्रपति राज राजेश्वर श्री महाराजा अजीतसिंहजी द्वारा यह पत्रिका भेजी गई है। श्रीमद् देवाधिदेवसे सेवित चरण कमल वाली श्री हिंगुलाजीके प्रताप

से यहां बहुत कुशल है। तथा श्रीमानों (आप) का प्रभूत कुशल चाहते हैं।

-

श्रीमान्का पत्र आया, समाचार अवगत हुए, आनन्द प्राप्त हुआ। श्रीमन्! हम दोनोंके समान व्यवहारसे तथा श्रीमान् के [आपके] सेवकोंके मुखसे मेरी हितैषिणी बातोंके सुननेसे हृदयमें बारंबार आनन्द समूह उमड रहा है। श्रीमान् ने लिखा कि 'नवाब कुतुबुल्मुलक' ने बहुत सहायता की उपकार करनेवालेके साथ उपकार करना ही चाहिये। मित्रतासे कठिन कार्य भी सुकर हो जाते हैं। कहा भी है कि मित्रोंका लाभ ही सम्पत्तिके लाभका दायक है, आप तो सार और असारके जाननेवाले हो। हम दोनों भाईयोंका स्नेह बढता रहे आपको भी इस स्नेहकी रक्षा करनी चाहिए। आपने पं० बालाजी जैसे प्रमुख सेनापतिको अमीरल उमरायकी आधीनता में भेजा, उन्होंने आकर श्रीमान् की सब बातें कहीं. सुनकर प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा कि कार्य अच्छी तरह करके शीघ्र ही सफलताकी सूचना दें। अतः लिखा जा रहा है। पहले तो बादशाह (फर्रुखशियर) ने हमें बुलाकर मनकी बातें नहीं कहीं फिर कई बदमाशों ने मिलकर हमारे साथ चालें चली। और पहले भी दोनों भाइयोंके साथ कपट किया गया और बादशाह ने भी धूर्तता की। तब हमने कुतुबुल्मुलक से सलाह की और अमीरल उमरायको पत्र लिखा कि आप जल्दी आवें। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको वह आ गया तब हमने निश्चय किया कि वह बादशाह होने योग्य नहीं है, यह कपटी है और नीचों के साथ इसकी मित्रता है, अतः इसे हटाकर प्राचीन वंशजको गद्दी पर बिठाना चाहिए। तब फा० शु० ९ को किलेमें रोककर फा० शु० १० बुधवारके दिन कैदकर रफीयलदरके लडके रफीयलदरजातको कैदखानेसे निकालकर तख्त पर बैठा दिया। वह अठारह वर्षका है। श्री श्रीजीकी कृपासे समस्त हिन्दुओं परका जजियाकर छुडाया तथा समस्त तीर्थ कर भी छुडाया। इन दोनों कार्योंसे आपको आनन्द होगा। आपका अभीष्ट हो गया। आपने लिखा कि हमें भी इस कार्य में हिस्सेदार बनायेंगे यह तो निश्चय ही है। हमने जो जो बडे काम किये हैं और करते हैं व करेंगे वे सभी आप ही के प्रतापसे बनते हैं आप हमारे हितैषियोंमें प्रमुख हो। हम गुजरात .... देशमें आवेंगे तब परम सन्तोषजनक मनोगत वृत्तान्त लिखेंगे।

एक हाथी, अठारह वस्त्र (पोशाकें) एक रत्नोंसे जडी हुई कटारी पं० मल्हारशंकरजी, पं० बालाजीके हाथ भेजी है, ये तुच्छ वस्तुयें हैं पर इनको देखते रहनेसे हमारी मित्रता अवश्य याद रहेगी व बढती रहेगी। अन्य रहस्य (बातें) पं. मल्हारशंकरजी, पं० बालाजीके मुखसे सुनेंगे ही। हम यहां अत्यधिक आनन्दमें हैं, अपनी कुशलताका पत्र भेजकर पारस्परिक व्यवहारकी रक्षा करनी चाहिये। यही बडे मनुष्योंके योग्य है। मान्योंको विशेष क्या लिखें।

श्री रामजी

सहर्षता

विशेष यह है कि प्राचीन बादशाह (फर्रुखशीयर) को तख्त से उठाकर प्राचीन शाही खानदानके व्यक्तिको तख्त पर बैठाकर ज्येष्ठ कृष्ण एकादशीके दिन इन वस्तुओंको लेकर स्वदेश व गुजरातकी तरफ प्रस्थान करनेकी हम तीनोंकी एक सम्मति है।

वस्तुएं- वस्त्र [महापोशाक], जवाऊ साज सामानसे युक्त एक घोडा, मोतियोंकी १ माला जो बादशाह ने अपने हाथोंसे गलेमें पहनाई तथा कर्णाभरणके रत्नयुक्त चार मोती, पगडीका भूषण मध्यमें कीमती रत्न जडित, जो लोक भाषामें 'सिरपेच' कहलाता है, बादशाह ने अपने हाथोंसे पहनाया। पागका एक और दूसराभूषण है वह भी जडित है जिसको लोक भाषामें 'किलंगी' कहते हैं बादशाहने अपने हाथोंसे पहनाई। फिर रत्न जडित एक खड्ग, एक रत्न जडित कटारी एक ढाल, नव लाख रुपये, एक हाथी हथिनी सहित, एक 'मुरातब तुम्मान तोग' जो सब राज्य--चिन्होंमें श्रेष्ठ है इन वस्तुओंको हमने स्वीकार किया है। आपके लिये भी यह अत्यानन्दक कार्य है। अपनी राजधानीमें आकर शीघ्र ही बहुत प्रसन्नता पैदा करनेवाला पत्र लिखेंगे।

अन्य बातें पत्र लानेवाले मेरे अनुचर दूतसे जानकर आप बहुत ही हर्षका अनुभव करें।

बहुतोंको विशेष कहने एवं लिखनेसे क्या?

सं० १७७५ ज्येष्ठ सुदि २ रविवारको यह पत्र लिखा गया।
७४॥ श्रीमद्राजाधिराज शाहुजी क्षत्रिय धुरन्धरको यह पत्र भेजा।

श्रीमद्राजाधिराज निज-कुल-दीपक शाहुजीको यह पत्र है।
७४ छत्रपति क्षत्रिय धुरन्धर श्री शाहुजीकी सेवामें यह पत्र रूपी वर्ण सूत्र भेजा है।

कोशस्यावश्यकता

लेखक— पं० नोमुल अप्पारायः ' कथनकला प्रपूर्णः ' काकिनाडा (आन्ध्र)

विषयोऽयं विशातपूर्व एव यत् उरीकृतमनेकैः विपश्चिद्भिः गीर्वाणी सर्वव्यवहारोपयोग्या भाषेति । साम्प्रतं केचन तन्नाङ्गीकुर्वन्तोऽपि अचिरेणैव कालेन सम्यग्विचार्य अंगीकरिष्यन्त्येवेति मदाशयः । भारतीयानामस्माकं संस्कृतभाषाविषये या अश्रद्धा दरीदृश्यते साऽत्वनतिदीर्घेण कालेन अस्तंगत्वा सर्वलोकानुरञ्जन कलाकलापोज्ज्वला प्रीतिः शीतांशुलेखेव समुत्पत्स्यत इत्यवगम्यते । चकोरकुमाराणां राका निशीथिनीव विद्वद्वर्याणामानन्दमभिवर्धयन्ती सा भाषामल्लिका भारतगगनाङ्गणे विराजयिष्यत एव । देश विदेशेभ्यः इक्ष्वाकुसुमाञ्जलयः समापतन्ति तत्पावन पादपीठाग्रतले । तत्पदसौकुमार्यसौन्दर्यप्रभावादिकं सम्यग्विज्ञाय विनतमस्तकाः प्रणमिष्यन्ति इतोधिकं साहित्यरसग्रहण पारीणाः सर्वेऽपि । तादृङ्मातृभाषा प्रभाव महोत्सव संदर्शन भाग्यलाभस्त्वनतिदूरे वर्तत इति निश्चप्रचम् ।

एतस्मिन्नवसरे भारतदेशीयानां संस्कृताभिज्ञानामुपरि तन्नाषामहादेवी पदार्चनाविधाने कश्चन भारः पतित इत्यनुमीयते । तत्किमितिचेत्:—संस्कृतभाषा महासागरे सर्वेषामपि शास्त्रीयाणां पदानां लोपः रत्नानामिव न विद्यते । अपितु केषांचन व्यावहारिक पदानामुद्धरणमवश्यंकरणीयमेवेति प्रतिभाति । अन्यदेश पदानि यावन्ति आधुनिक व्यवहारयोग्यानि लभ्यन्ते तावन्ति संस्कृतभाषाकोशेषु न लभ्यन्त इति न सत्यदूरम् । ' संस्कृत ' ' मधुरवाणी ' ' सहृदया '' मञ्जूषा ' प्रभृति संस्कृतवार्तापत्रिकासु कानिचन व्यावहारिक पदानि प्रयुज्यन्ते । किन्तु तेषामेकवाक्यता न प्रतीयते वैयक्तिकत्वात् । भारत देश शासनाधिकारो यदा विदेशीयानां हस्ते पतितः तदादि तत्तद्देशभाषाणां गौरव प्रपत्तयस्तत्र स्थिरीभूताः । प्रजानां तु पालक भाषा गौरवात् नित्यव्यवहारेषु अन्यदेशभाषागौरवा सुबहुलतया जातः । अतएव व्यावहारिक शब्दजालानामुत्पत्तिः प्रचुरतया संजाता तत्तद्भाषासु । शास्त्रचर्चासु यथा गीर्वाणीप्रयोगो जायते न तथा व्यावहारिक प्रयोजनेष्विति सर्वजनविदितो विषयः । अयं दोषस्तु दूरीकरणीय एव समर्थैर्गीर्वाणाभिज्ञैः पण्डितैः । तदैव खलु अस्मन्मातृवाणी सर्वालंकारपूर्णा, सर्वसंशय विच्छेदिनी, सर्वानन्ददात्री च भविष्यति । तदर्थमस्माद्विद्वद्वर्यैर्यत्नः करणीयः खलु । तथा न क्रियते चेत् कथं वायं दोषो निरस्येत ? विचारयन्तु भारतीयाः भाषासेवकाः ।

एतद्विषये सूचनेयं दीयते मया,—

संस्कृतभाषायामेकः कोशः संग्रथनीयः । यस्मिन् अधुनाव्यवह्रियमाणानां नैकविधानां पदानां संचयस्तिष्ठेत् । पदार्थविज्ञान, भौगोलिक, ज्यौतिषिक, चैकित्सिक, यान्त्रिक, व्यावहारिक, औद्योगिक, न्यायालयादि विविध विषयाभिज्ञाः तत्तत्पदानि अन्यभाषा व्युत्पत्तिर्विचार्य गीर्वाण्यां विरचयन्तु । तानि सम्यक्परीक्ष्य कोशे ग्रथयितुं कश्चन विविध विषय विज्ञानी सुदीक्षितस्तिष्ठेत् । कोशसम्पादनात्प्रागेव तानि पदानि कस्यांचन वार्तापत्रिकायां प्रकटीभवन्तु । यद्विज्ञाय संस्कृतप्रणयिनां तत्कोशग्रहणेच्छा भवेत् । एष महान् क्रियाकलापः तादृशैर्महानुभावैरेव निवर्तयितुं शक्यते येषां हृदयानि जातीयोन्नतिमभिकाङ्क्षन्ते । येतु संस्कृतभाषाभिवृद्धिमात्माभिवृद्धिं मन्यन्ते । येषां हृदयेषु भारतदेशवासश्च भिन्नता वितरणेन खण्डान्तर रसिकवर्तंसानां मनांसि रञ्जयितुमस्ति कौतूहलम् । ये तु भारतीयनागरिकतावैभवप्राकाश्यमन्यदेशापूर्वोऽर्पयितुमिच्छन्ति । एतादृक्सामर्थ्यं समुचित दीक्षादक्षता च श्रीमत्सु " वैदिक धर्म ' पत्रिका सम्पादक महोदयेषु वर्वर्ति इति विश्वसिमि । यदि तेषां एतादृक् " संस्कृताभिनवकोश " विरचने संकल्पो जायेत तर्हि देशस्यास्य महानुपकारो भवितेति भावयामि । अलं बहुना । इति शं ।

बा ल--प क्षा घा त

अर्थात्

पोलिओ-माईलीटीस

[लेखक— योगीराज परिव्राजक राजवैद्य- श्री श्रीमत् ब्रह्मचारी गोपाळ चैतन्य देव, पीयूषपाणी, केळेवाडी, मुंबई ४]

(४)

आयुर्वेद–सिद्धान्त।

वर्तमान समयमें भूमण्डल पर अनेक-प्रकारके संकर-जातीय रोगोंका प्रादुर्भाव हो रहा है। आयुर्वेदके मनीषिवृन्द सब रोगोंका जो नामकरण कर गये हैं, उनके अतिरिक्त अनेक-प्रकारके रोगोंके नाम वर्तमान समयमें सुनने तथा देखनेमें आ रहे हैं। जैसा 'मिनिन जाइटिस रोग, इसे हिन्दूस्थानमें गर्दन-तोड बुखार बोलने पर भी, वास्तवमें वह सन्निपातका ही एक प्रकार है। अतः घोर सन्निपातके नियमानुसार सुविज्ञ आयुर्वेद-शास्त्री यदि उसकी चिकित्सा शुरु करे तो उसमें अवश्य लाभ होता है, रोगी बच जाता है, सुचिकित्सकको यश मिलता है;- यद्यपि 'मिनिन जाइटिसकी चिकित्सा डाक्टरी विज्ञानमें कदाचित ही होती है। आयुर्वेद शास्त्रीवृन्दको यश मिलनेका एक मात्र कारण आयुर्वेदका त्रिदोष यानीं वायु-पित्त कफका सिद्धान्त है। इस विषय पर मैं आगे सविस्तर चर्चा करूंगा।

"पोलीओमाइलीटिस" यानीं 'पोलीओ' रोग जिसे भारत-सन्तान 'बालक-पक्षाघात' कहती हैं, यह भी सन्निपातका ही एक नवीन संस्करण है। अब देखना चाहिए, कि सान्निपातिक ज्वरके लक्षणोंके साथ इसका कहाँ तक मेल-जोल है। आयुर्वेद-विज्ञानानुसार सर्व-प्रकारके रोगोंका कारण यह है कि:—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।
तत् प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम्॥

कुपित वायु-पित्त-कफ ही सर्व प्रकारके रोगकी उत्पत्तिके कारण है एवं अनेक प्रकारकी अहित-सेवा ही वातादि त्रिदोषके प्रकोपके कारण है। यद्यपि कुपित वातादि त्रिदोष ही सर्व प्रकारके रोगोंके कारण हैं, तथापि अनेक समय कोई-कोई रोग दूसरे रोगोंके उत्पादक होते हैं। जैसे ज्वर-संतापसे रक्तपित्त रोगकी उत्पत्ति होती है; वैसे ही रक्तपित्त रोगसे भी ज्वरकी- उत्पत्ति होती है। तद्वत् ज्वर और रक्तपित्त इन दोनों रोगोंसे राजयक्ष्मा (टी. बी.) रोगका आक्रमण होता है। इस प्रकार एक रोगसे दूसरा रोग, दूसरे से तीसरा रोग, इस प्रकारसे अनेक प्रकारके वर्ण-संकर रोगोंकी उत्पत्ति हुई। पोलीओ वा बालक-पक्षाघात रोग भी एक प्रकारके वर्णसंकर रोग ही है।

ज्वरके कारणके सम्बंधमें आयुर्वेद-विज्ञानका मत है, कि—

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्युः रसानुगाः॥

आहार-विहारादिके अनियमके कारण वातादि त्रिदोष कुपित होकर "आमाशय" नामक कोष्ठमें सञ्चित होनेसे, आमरस दूषित होता है एवं कोष्ठाग्निसे बाहर निक्षिप्त होता है— इससे ही ज्वरकी उत्पत्ति होती है। कोष्ठाग्नि बाहर निक्षिप्त होनेसे शरीरका त्वक् गरम होता है।

बाल-पक्षाघात रोगमें प्रायः अधिकांश रोगियोंमें पहिले-पहल वात और पित्तके प्रकोपसे रोगाक्रमण होता है। वात + पित्त संयुक्त ज्वरका निदान निम्न रूप है:-

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा।
कण्ठास्यशोषो वमथुः रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः॥

वात और पित्त ये द्विदोष-जन्य ज्वरमें तृष्णा (प्यास), मूर्च्छा, भ्रम, दाह, अनिद्रा, मस्तकमें दर्द, कण्ठ और मुखमें शोष, वमन (उल्टी), रोमाञ्च, अरुचि, अंधकार दर्शन (दृष्टि-शक्ति कम होकर अंधेरा देखना), अंगुलियोंके पर्व-स्थानोंमें खूब दर्द तथा जृम्भा ये सब लक्षण प्रकाश पाते हैं।

मेरे अनुभवसे बाल-पक्षाघात रोग वात-पित्तज व्याधि है। क्योंकि मैंने जितने रोगी देखे एवं डाक्टरी-विज्ञान का जो अध्ययन किया उससे वह वात-पित्तज-ज्वर ही मालूम पड़ता है। परन्तु कोई-कोई रोगी जटिल अवस्थामें पहुँच जाता है। उस समय वह मिनिन जाइटीसका रूप धारण कर लेता है। उस समय रोगीकी स्थिति खराब हो जाती है, जिसे हम घोर-सान्निपात मानते हैं। सूज्ञ सज्जनोंके विचारकी सुविधाके लिए हम आयुर्वेद विज्ञानसे उसका निदान प्रकट कर देना उचित समझते हैं।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने॥ इत्यादि

अर्थात् सन्निपात-ज्वरमें क्षणे-क्षणे दाह तथा क्षणे-क्षणे शीत अनुभव होता है। अस्थिसन्धि तथा सिरमें दर्द दोनों आँखें जलसे भरी रहती हैं, तथा मलिनता रक्तवर्णता व कुटिलता किम्वा खूब बड़ी आँखें दोनों कानोंमें अनेक प्रकारके शब्द और दर्द कण्ठमें शूक-स्पर्शकी भाँति झुं-झुं करना; तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप, कास, श्वास, अरुचि, भ्रम। जीभका वर्ण काला एवं खरस्पर्शता-जैसी-गौ-जीभ, अंग—प्रत्यंग सब ढीला पड जाना, मुखसे रक्त अथवा पित्त संयुक्त कफ थूकना; सिरको हिलाना, तृष्णा, निद्रानाश हृदयमें दर्द, दीर्घ-समयके बाद मल-मूत्र त्याग करना तथा पसीना आना, त्रिदोष पूर्णताके कारण शरीर साधारण कृश होवे, कण्ठमें घर-घर शब्द, शरीरके त्वचाके ऊपर श्याव वा अरुण-वर्णका गोल-गोल दाग, बातें कम करना, मुख तथा नाकके भीतर क्षत (घाव) होना, उदरमें भारीपन, एवं वातादि दोषोंका परिपाक देरसे होता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त ठण्ड लगना, दिवसमें अधिक नींद एवं रातमें अनिद्रा, अथवा दिवा-रात्रमें अधिक निद्रा वा अनिद्रा, अतिशय पसीना निकलना अथवा बिलकुल ही पसीना बन्द। नृत्य-गीत-हास्य आदि जैसा पागल-पन, — ये सब सान्निपातिक ज्वरके लक्षण हैं। सान्निपातिक ज्वरका मतलब ही है- त्रिदोषमें विकार। त्रिदोषमें दोषके कम अथवा अधिकके हिसाबसे सन्निपात-ज्वर और १२ बारह प्रकारके होते हैं। अर्थात् सन्निपात-ज्वर कुल १३ प्रकारके हैं। विस्तारके भयसे इनके लक्षणोंको प्रकट नहीं करता हूँ।

अभिन्यास नामक एक प्रकारका ज्वर होता है उसके लक्षण हैं- वात-पित्त-कफ (दोष-त्रय) अधिक परिमाणमें कुपित होनेसे, वक्षःस्थलके स्रोत-समूहमें प्रवेश कर, आमरस के साथ मिल जाता है तब चक्षु-कर्णादि ज्ञानेन्द्रिय और मनको विकृत कर अति कष्ट साध्य तथा भयंकर अभिन्यास नामक ज्वरको उत्पन्न करता है। इससे रोगीकी शारीरिक चेष्टा, एवं दर्शन, श्रवण, स्पर्शन और घ्राण-शक्ति (सूंघना) की हानि हो जाती है। रोगी किसीको भी नहीं पहचानता, कोई शब्दका अनुभव नहीं करता। सर्वदा सिरको हिलाता, एवं पार्श्व-परिवर्त्तन करता रहता है। कुछ भी खाना नहीं चाहता, सदा सर्वांगमें सुँई चुभनेकी भाँति दर्द होता है। कुछ भी बोल नहीं सकता; कभी कभी मुश्किलसे थोडीसी बात करता है आयुर्वेदने इसे 'महाघोर ज्वर' कहा है। मिनिन जाइटीस ज्वरके साथ इस अभिन्यास ज्वरका अनेक प्रकारसे मेलजोल है।

डाक्टरी विज्ञानने मिनिन जाइटीस तथा पोलीओमाई-लीटिस ज्वरके जन्तुका आविष्कार मेरुदण्डस्थ मज्जासे किया है। हमें देखना चाहिए कि कृतयुगके आयुर्वेद मनीषि-वृन्द को इस बातका अनुभव हुआ था या नहीं, कि मज्जाके भीतर रोग विष रह सकता है? स्थिर चित्तसे आयुर्वेद विज्ञानका अध्ययन करनेसे मालूम होता है, कि मज्जाके भीतर रोग-विष (डाक्टरी मतसे जीवाणु-कीटाणु-बीजाणु) अवश्य होता है, एवं उन्हें यह बात मालूम भी थी। यथा—

सन्ततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः।
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि अस्थिमज्जगतः पुनः।
कुर्याच्चातुर्थकं घोरमन्तकं रोग-सङ्करम्॥

अर्थात् वातादि दोष रसधातुको आश्रय करनेसे सन्तत, रक्त-धातुको आश्रय करनेसे सतत, मांसाश्रित होनेसे अन्ये-द्युष्क, मेदधातुगत होनेसे तृतीयक एवं अस्थि व मज्जाधातु

को आश्रय करनेसे चतुर्थक-ज्वर, उत्पन्न होता है यह चतुर्थक- ज्वर अति भयंकर कालान्तक (यमराज जैसा) सदृश तथा अनेक प्रकारके रोगोंका उत्पादक है। यह संकर जातीय रोग है। आयुर्वेदमें यह भी- उक्त है, कि चतुर्थक-ज्वर प्रति चार दिनमें उत्पन्न होता है। आयुर्वेद मतसे संसार भरमें जितने प्रकारके ज्वर होते हैं, वह सप्तधातुओंके आश्रय करके ही होते हैं। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सप्त धातुओंमें एकसे एक धातु क्रमानुसार उत्कृष्टतरके होते हैं। शरीरमें सबसे श्रेष्ठ धातु शुक्र है। शुक्रमें ज्वराक्रमणका मूल होता है। यह बात केवल मात्र आयुर्वेदके स्थितप्रज्ञ मनीषिवृन्दको ही मालूम था। संसारके दूसरे किसी भी विज्ञान-विद्को अब तक उसका पता भी नहीं है। वे लिखते हैं, कि:—

रस रक्ताश्रितः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः।
आस्थिमज्जगतस्थोऽपि शुक्रस्थस्तु न जीवति॥

ज्वर शुक्रगत होनेसे पुरुषांग जड़वत् स्तब्ध हो जाता है एवं उससे प्रभूत परिमाणमें शुक्रक्षरण होता है। ऐसे शुक्र क्षरण रोगीके जीवनकी रक्षा नहीं होती है। इस प्रकारका शुक्रगत ज्वर कदाचित ही होता है। योग साधन रत सूक्ष्म-तत्वानुसंधानके सिवाय ऐसा गंभीर तत्व अनुभव करना साधारणके लिए साध्यातीत है। आयुर्वेद विज्ञान कितना सुगंभीर है- विचार कीजिए।

अब इस बातका निश्चय हो गया कि अस्थिगत, यहाँ तक कि शुक्रगत ज्वरका भी विवरण आयुर्वेदमें विद्यमान है अतः बाल पक्षाघात रोग यानी पोलीओमाइलीटिश-शब्द नवीन होने पर भी यह पुरातन रोग ही है। इसे यदि अभिन्यास-ज्वरका एक संस्करण कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी।

मेरी रायसे यह बाल पक्षाघात-ज्वर मेद अस्थि और मज्जाको आश्रय करके उत्पन्न होता है। मेदगत-ज्वरका निदान यह है कि:- इस ज्वरमें घर्म (पसीना), प्यास, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन (उल्टी), शरीर पर दुर्गन्ध, अरुचि, ग्लानि और असहिष्णुता होती है।

अस्थिगत-ज्वरका निदान यह है, कि- शरीरस्थ अस्थि समूहमें भंगवत् दर्द, कुन्थन, श्वास, मलभेद, वमन और अंग-विक्षेप यानी हाथ पैरको चालना है।

मज्जागत-ज्वरका निदान यह है कि,— इस ज्वरमें आंखोंमें अंधेरा आ जाता है हिक्का खाँसी, शीत वमन अन्तर्दाह महाश्वास और हृदय छिन्न-भिन्न हो गया हो ऐसा दर्द होता है।

उपर्युक्त तीन प्रकारके ज्वर-मेदोगत, अस्थिगत एवं मज्जागतके लक्षणोंके साथ बाल-पक्षाघात नामक रोगका मेल है। क्योंकि पक्षाघात होनेके पहिले अचिन्त्य भावसे बालकोंको ज्वर शुरू होता है, जब ज्वरका वेग मन्द हो जाता है, वा ज्वर उतर जाता है तब मालूम पडता है, कि उसका कोई अंग पक्षाघात ग्रस्त हो गया है। अंगप्रत्यंग पक्षाघात ग्रस्त होनेका प्रधान कारण ही है, वायुमें विकार उत्पन्न होना। इस बातका वैज्ञानिक-विश्लेषण मैं वायु तत्वमें करूंगा। संक्षेपमें यहाँ इतना ही जान लेना कि बालकोंको पक्षाघात होनेका कारण यद्यपि त्रिदोष है, तथापि पित्त-संयुक्त वायु ही प्रधान कारण है।

पित्तको ग्रन्थान्तरमें अग्नितत्व मानते हैं। सरल सीधी बातोंमें सर्व प्रकारके ज्वरमें ही पित्तका प्रकोप होना चाहिए। बाल-पक्षाघात रोगमें सर्व प्रथम जब ज्वर होता है, तब भी पित्तका विकार विशेष रूपमें मिलता है, क्योंकि उस समय रोगीको वमन होता रहता है। ऐसा भी कई रोगियोंमें देखा है, कि ज्वर उतर जानेके बाद पैर-हाथ पक्षाघात होनेके बाद भी उल्टी (वमन) होता रहता है। यह वमन ही पित्तका प्रधान लक्षण है।

बाल-पक्षाघात ज्वर जब सान्निपातिक अवस्थामें पहुँच जाता है (ऐसा रोगी भी मैंने देखा है) तब वह पोलिओमाईलीटीस नहीं रहता, वह मिनिनजाइंटिस हो जाता है। सन्निपात ज्वर जो अभिन्यास-ज्वरमें परिणत हो जाता है, उसके साथ मिनिन जाइटीसका लक्षण मिलता है। अतः मिनिन जाइंटीस ज्वरको यदि हम अभिन्यास ज्वर कहेंगे तो कोई अनुचित नहीं होगा।

किसी किसी रोगीको पहिले पोलिओका आक्रमण होकर, ज्वर उतर नहीं जाता है, उक्त ज्वरावस्थामें ही मिनिन आईटीस हो जाता है। ऐसा भी अति-गंभीर स्थितिवाले एक रोगीको मैंने चिकित्सा की। पोलिओके लिए उसका हाथ पैर शून्य (पक्षाघात ग्रस्त) हो गया था; उस अवस्थामें उसका ज्वर उतर नहीं गया; अपितु दिन व दिन उसका

ज्वर तीव्र होता गया प्रलाप, अचैतन्य, हिचकी आदि अनेक प्रकारके उपसर्गोंने उसे घेर लिया, गर्दन सख्त हो गया, उस समय डॉक्टर वृन्द मिनिन जाइटीस कहने लगे थे। पहिले वे लोग उस रोगको पोलिओमाईलीटिस ही कहते थे। अतः यह प्रतिपन्न होता है, कि पहिले पोलिओमाईलीटीसका आक्रमण होकर, बादमें वही रोग मिनिनजाइटीसमें परिणत हो गया था। दूसरी ओर डाक्टरी मतसे पोलिओमाइलीटीस और मिनिन जाइटीसमें विशेष अन्तर नहीं है। पोलीओमाइलीटिस रोग गंभीर अवस्थामें मिनिन-जाइटीस हो जाता है।

अब हमें विचार करना चाहिए कि ज्वरका आक्रांत रोगी किस कारणसे पक्षाघात् ग्रस्त हो जाता है- जिसे पाश्चात्य-विज्ञान विद पोलीओ कहते हैं। आगामी लेखमें इस विषय पर आयुर्वेद मतसे अपने विचार प्रकाश करूंगा।

' स्वामी दयानन्दने अस्पृश्योंकी निन्दनीय अन्यायपूर्ण सत्ताको कभी सहन नहीं किया और उनसे बढकर दलित वर्गके अपहृत अधिकारोंका उत्साही समर्थक और कोई नहीं हुआ। अस्पृश्य समझे जानेवाले लोगोंको आर्य समाजमें समान रूपसे प्रविष्ट कर लिया गया क्योंकि आर्य कोई जाति नहीं।'

' रोमारौला '

' वस्तुतः भारतमें यह एक नवयुग निर्माता दिन था जब एक ब्राह्मणने (स्वामी दयानन्द सरस्वतीने) न केवल यह स्वीकार किया कि सब मनुष्योंको वेदोंके अध्ययनका (जिसे कट्टरपन्थी ब्राह्मणोंने निषिद्ध कर रक्खा था) अधिकार है। प्रत्युत साथ ही इसपर उसने बल दिया कि उनका पढना, पढाना और सुनना सुनाना प्रत्येक आर्यका मुख्यधर्म है।'

' रोमारौला '

स्वत्व मूल्य मूलधन आदिके स्वरूपका लौकिकत्व

(लेखक— श्री ईश्वरचन्द्रशर्मा मौद्गल्य, आर्यसमाज, काकड़वाड़ी, बंबई ४)

(३)

(गताङ्कसे आगे)

मूल्यका स्वरूप

पण्य वस्तुओंका आकार उनके पण्यपनको नहीं प्रकाशित करता। अपने पहनने और बेचनेके लिये बनाये दो प्रकार के वस्त्र देखकर या छूकर कोई भी भोग्यसे पण्यको पृथक् नहीं कर सकता। यदि पहलेसे बेचनेके लिये उनके बनाने-का ज्ञान हो तो उन्हें पण्य समझनेमें कठिनाई नहीं होती। प्रातिस्विक अपना उपभोग और विनिमय दो परस्पर विरोधी प्रयोजन हैं। वस्तुके कालमें अविद्यमान प्रयोजनका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। वस्त्र देखकर कोई भी उपयोगी और श्रम जन्य कह सकता है। उस समय न कोई पहन रहा है न बिक्री कर रहा है। दो प्रकारकी संभावना होगी, संभव है पण्य हों संभव है भोग्य हों। भोग्य और पण्य होनेके लिये दो धर्म आवश्यक हैं। उपयोगिता और श्रम केवल पण्य होनेके लिये तीसरे धर्मका भी ज्ञान होना चाहिये। वह है विनिमयके योग्य होना। बिना उपयोगिता और श्रमके वस्तु विनिमयके योग्य नहीं होती अतः उपयोगिता और श्रम कारण हैं। कारण तो वे भोग्य वस्तुके भी हैं पर उस दशामें उन्हें कारण ही कहते हैं, कोई दूसरा नाम नहीं होता। जब वे विनिमयके लिये वस्तु उत्पन्न करते हैं, अर्थात् जब उपयोगी श्रम किसी उपयोगी वस्तुको लेन-देन के लिये बनता है तब उसका नाम मूल्य हो जाता है। मूल्य रूप श्रम उपयोगितासे भिन्न है पर उससे रहित नहीं। विनिमयका कारण मूल्यभूत श्रम बिना उपयोगिताके कभी नहीं रहता। इसलिये जब पण्य दिखाई देगा तब उसमें उपयोगिता और घनीभूत श्रम परस्पर संबन्ध ही दिखाई देंगे।

श्रम स्थिर नहीं, क्षणिक है इसलिये सीधा उसका लेन-देन नहीं हो सकता। श्रमसे जन्य पण्यका लेन-देन हो सकता है अतः पण्यके द्वारा श्रमका लेन-देन होने लगता है। एक पण्यके उत्पादनमें जितना श्रम लगा है उतना दूसरे पण्यके उत्पादनमें भी, इस कारण श्रमके समान परि-णाम वाले पण्य परस्परका मूल्य बन जाते हैं। मूल्य पण्य वस्तुओंमें एक प्रकारका संबन्ध है। श्रमके परिमाणकी समानताको बिना जाने इस संबन्धका ज्ञान नहीं होता। समानता एक वस्तुमें संभव नहीं। उसके लिये दो या दोसे अधिक वस्तु चाहिये। दो पण्योंमें एक दूसरेका मूल्य है। यह मूल्यका आरम्भिक स्वरूप है, इसमें इसका आकार छोटा है। उदाहरणके लिये दो गज खद्दरके एक कुर्तेके समान है। दो गज खद्दरका मूल्य है एक कुर्ता।

सादृश्यके दो संबन्धी होते हैं, एक अनुयोगी दूसरा प्रति-योगी। जिसकी समानता कही जाय वह अनुयोगी। जिसके साथ समानता हो वह प्रतियोगी। देवदत्त यज्ञदत्तके समान हो तो देवदत्त अनुयोगी और यज्ञदत्त प्रतियोगी है। यज्ञदत्तको देवदत्तके समान कहना हो तो यज्ञदत्त अनुयोगी और देव-दत्त प्रतियोगी है। एक कालमें एक वस्तु अनुयोगी और प्रतियोगी नहीं हो सकती।

दो गज खद्दरका मूल्य एक कुर्ता हो तो उसका अभिप्राय है, दो गज खद्दर एक कुर्तेके समान है। दो गज खद्दर अनु-योगी है, एक कुर्ता प्रतियोगी है। इसका अभिप्राय हुआ दो गज खद्दरमें घनीभूत श्रमके समान कुर्तेका श्रम है।

प्रसिद्धके साथ अप्रसिद्धकी समता की जाती है। कल्पना कीजिये उपमेय और उपमान स्वयं साम्यके प्रतिपादक हैं तो कहना होगा अप्रसिद्ध उपमेय प्रसिद्धके साथ समता द्वारा अपनी महिमा दिखाता है। खद्दरकी महिमा है मूल्य, वह अप्रसिद्ध है। कुर्तेकी महिमा अर्थात् उसका मूल्य प्रसिद्ध है। जिस समय खद्दर अपना मूल्य एक कुर्तेके द्वारा बता

रहा है उस समय कुर्ता अपना मूल्य नहीं बता सकता। कुर्ता केवल समता प्रकट करनेका साधन हो रहा है, उस समय वह समान ही रहेगा।

इस उपमान उपमेय भावको उलट दिया जाय तो कुर्ता खद्दरके समान होगा। तब कुर्ता खद्दरके द्वारा अपना मूल्य प्रकट करेगा। उस दशामें खद्दर अपना मूल्य न कह सकेगा। उपमान जिस क्षणमें उपमेयका साम्य प्रकट करेगा उस क्षण अपने साम्यके विषयमें चुप रहेगा।

विनिमय मूल्यके रूपमें सम होकर खद्दर और कुर्ता विजातीय होने पर भी सजातीय हो गये हैं। इनके द्वारा इनके उत्पादक श्रम बुनना और सीना सजातीय हो गये हैं। वे अब भिन्न नहीं प्रतीत होते। दोनों मनुष्यके उपयोगी विनिमयके उत्पादक श्रम हैं। इस सामान्य रूपमें आकर सीने और बुननेका प्रातिस्विक विशेष रूप दिया जाता है।

कुर्ता अपने विशेष रूपमें मूल्य नहीं है। वह पण्य न होकर श्रमसे जन्य उपयोगी भोग्य वस्तु है। मूल्य रूपसे खद्दर कुर्तेके आकारमें प्रकट होने लगता है। मूल्य रूप उसके उपयोगी श्रम जन्य भौतिक रूपसे विलक्षण है। भोग्य रूप श्रमसे जन्य और उपयोगी है। इस रूपसे खद्दर और कुर्ता सर्वथा भिन्न हैं।

सादृश्यके द्वारा उपमान भूत प्रतियोगी उपमेय अनुयोगीके मूल्यको प्रकट करते समय अपना मूल्य प्रकट करनेमें असमर्थ है। यह प्रतियोगीका असाधारण स्वभाव है। × मार्क्स इसके अतिरिक्त प्रतियोगीके तीन अन्य विलक्षण स्वभाव दिखाते हैं। उनके अनुसार उपमान अर्थात् प्रतियोगी विनिमय मूल्य प्रकट करनेके लिये उपयोग मूल्यके रूपमें रहता है। स्वयं कोई पण्य अपना समान नहीं हो सकता अतः वह अपने मूर्त शरीरके रूपको अपने मूल्यके रूपमें नहीं बदल सकता। प्रत्येक पण्यको कोई दूसरा पण्य समान रूप चुनना पड़ता है। चुनने पर दूसरे पण्यके मूर्त आकारको अपने मूल्यके रूपमें लेना आवश्यक हो जाता है। पर उपमान यदि उपयोगी वस्तु विशेषके रूपमें प्रतीत होगा तो उपमेयके मूल्यको प्रकाशित न कर सकेगा। जिस समय + एक कुर्ता दो गज खद्दरका मूल्य बनकर आता है उस समय कुर्तापन सामने नहीं आता। वह उस समय विनिमय के योग्य उपयोगी श्रमके रूपमें दिखाई देता है। अब यदि खद्दर कुर्तेके द्वारा अपना मूल्य प्रकाशित करता है तो खद्दर उसे मूल्यके रूपमें देखता है। कुर्ता भी खद्दरके सामने मूल्य रूपमें आता है। खद्दर अपना खद्दरका आकार और कुर्ता अपना विशिष्ट आकार न छोड़े तो समानता न होनेसे कुर्ता मूल्य रूपमें नहीं आ सकेगा। हां कुर्ता अपनी दृष्टिमें मूल्य रूप नहीं है। कारण, कुर्ता कुर्तेका मूल्य नहीं। पर अपने लिये कुर्तापन न छोड़कर भी खद्दरके लिये मूल्य बननेमें कोई रुकावट नहीं है।

अब दूसरे विलक्षण स्वभाव पर विचार कीजिये। वे कहते हैं पण्यका शरीर, जो समान होकर रहता है, वह मनुष्यके सामान्य श्रमका घनीभूत भौतिक रूपान्तर है। साथ ही वह एक विशेष प्रकारके उपयोगी मूर्त श्रम विशेषसे उत्पन्न है। इस कारण मूर्त श्रम विशेष मनुष्यके सामान्य श्रमको प्रकट करनेका साधन है। सीने और बुननेमें मनुष्यकी श्रम शक्तिका विस्तार हुआ है। इसलिये दोनों मनुष्य श्रम हैं। मूल्य उत्पन्न करनेके लिये उनका यह रूप आवश्यक है। किन्तु इस रूपमें अवस्था सर्वथा बदल जाती है। बुनना जब मूल्य प्रकट करता है तब बुननेके रूपमें नहीं। वह मनुष्य श्रमके रूपमें मूल्यका उत्पादक है। जिस प्रकार कुर्ता शारीरिक आकारमें मूल्यका सीधा प्रकाशन है इस प्रकार सीना श्रमके मूर्त विशेष रूपमें विद्यमान होकर मनुष्यके सामान्य श्रमका प्रत्यक्ष सीधा रूपान्तर हो जाता है।

यहां भी वही पहलेकी भूल है। उपमान अर्थात् प्रतियोगी श्रम मूर्त विशेष श्रम है सही पर विशेष रूपमें वह मूल्य नहीं है। मूल्य होनेके लिये उसका सामान्य रूपमें, मनुष्य श्रमके रूपमें, होना आवश्यक है। सीना जब सीनेके रूपमें न प्रकट होकर उपयोगी श्रमके रूपमें प्रकट हो तब विशेष मूर्त श्रमको सामान्य मनुष्य श्रमका प्रकाशक नहीं कह सकते। विशेष श्रम प्रतियोगीकी दृष्टिसे भले ही विशेष मूर्त श्रम हो पर मूल्यके विचारसे

× कैपीटल, १ भाग, पृ० ६५ और आगे

+ पूंजी, १ भागमें २० गज लिनन और १ कोट उदाहरण है।

उपमेय, अनुयोगी, के सामने वह सामान्य रूपमें है। बुनना अपना मूल्य प्रकट करनेके लिये जिस प्रकार मनुष्यके सामान्य उपयोगी श्रमके रूपमें आ जाता है इस प्रकार सीना बुननेका मूल्य होनेके लिये सामान्य उपयोगी श्रमके रूपमें आता है। परस्परके संबन्धमें आकर पण्योंका रूपान्तर होना अवश्यम्भावी है।

प्रतियोगी, उपमानका तीसरा विलक्षण स्वभाव है, व्यक्तियोंके प्रातिस्विक श्रमका सामाजिक रूपमें बदल जाना। सीनेकी पहचान भेदहीन मनुष्य श्रमके रूपमें होती है। किसी भी विशेष श्रमके साथ इसकी एकता कर ली जाती है। इस कारण खद्दरमें घनीभूत श्रमके साथ भी इसकी एकता हो सकती है। फलतः पण्यके उत्पादक अन्य श्रमोंके समान सीना यद्यपि व्यक्ति विशेषका श्रम है, तो भी स्वभावमें सामाजिक है। इसीका यह फल है कि सीनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है उसका अन्य पण्य वस्तुओंसे विनिमय हो सकता है।

पर प्रतियोगी श्रम ही प्रातिस्विक रूपको छोडकर सामाजिक रूपको नहीं लेता। अनुयोगी श्रम भी इसी अवस्थामें है। जब दो गज खद्दरका मूल्य एक कुर्ता होता है। तब कुर्तेका श्रम ही नहीं खद्दरका श्रम भी सामाजिक हो जाता है। बुनना यदि बुनना ही रहा तो सीनेके साथ समानता न होगी। बिना समानताके विनिमय न होगा। सीनेको बुननेका मूल्य बननेके लिये बुननेके साथ एकता करनी होगी। पर यदि बुनना एकता न होने दे तो एकता कहांसे होगी? इसके लिये बुननेको भी एकता करनी होगी। एकता दोनों ओरसे होगी। इस एकताके फलस्वरूप प्रतियोगी पहली बार अनुयोगीके मूल्यको प्रकट करेगा। सीना बुननेके साथ एक होकर बुननेका मूल्य कहेगा। बुननेको अपना मूल्य कहना हो तो स्थानका परिवर्तित करना होगा। बुनना सीनेके समान होगा।

बस उपमानकी मूल्यके विषयमें एक ही विलक्षणता है। वह उपमेयके सामने उस रूपमें आता है जिसमें उसे वह देखना चाहता है। उपमेयको वह देखता अपने समान रूपमें है पर उपमेयका यह रूपान्तर उसके मूल्यको प्रकट करनेमें समर्थ नहीं होता। कुर्ता खद्दरको मनुष्यके श्रम रूप में देखता है, पर इसलिये कि वह उसका मूल्य होकर प्रतीत हो। खद्दरको अपने मूल्य रूपमें दिखानेकी शक्ति उस समय कुर्तेमें नहीं है।

श्रमका मूल्य रूपमें ज्ञान जिन क्षणोंमें होता है उनकी संख्या करनेसे इस विलक्षण स्वभावकी प्रतीति स्पष्ट हो सकती है।

पहले क्षणमें — एक कुर्तेके श्रमका ज्ञान

दूसरे क्षणमें — दो गज खद्दरके श्रमका ज्ञान

तीसरे क्षणमें — दो गज खद्दरका श्रम एक कुर्तेके श्रमके समान है यह ज्ञान

चौथे क्षणमें — दो गज खद्दरके श्रमका मूल्य एक कुर्तेका श्रम है, यह ज्ञान

तीसरे क्षणमें कुर्तेका श्रम खद्दरके श्रमकी समानता बताता है इसलिये अपनी समानता नहीं बता सकता उस क्षणमें कुर्ता खद्दरके समान नहीं प्रतीत होता। फलतः चौथे क्षणमें खद्दरके श्रमका मूल्य प्रकट होगा। कुर्तेका श्रमका नहीं।

संस्कृत भाषा परीक्षा सम्बन्धी

आवश्यक सूचनयें

यह सूचित करते हुए हमें परम हर्ष होता है कि हमारी परीक्षाओंके केन्द्र भारतसे बाहर भी स्थापित हो रहे हैं। दक्षिण अमेरिका तथा आफ्रिकामें हमारे अनेक केन्द्र प्रस्थापित होनेके प्रयत्न जारी हैं। विदेशोंमें रहनेवाले हमारे भारतीय बन्धु ही नहीं अपितु विदेशी जनता भी आज हमारी मातृभाषा संस्कृत सीखनेके लिये समुत्सुक है, यह जानकर किस भारतीयको हर्ष न होगा?

सुव्यवस्थाकी दृष्टिसे परीक्षा-विधियोंमें हमें कुछ परिवर्तन कर देना पडा है। केन्द्र व्यवस्थापक तथा प्रचारक महानुभाव निम्नाङ्कित सूचनाओंपर कृपया अवश्य ध्यान दें।

१- बम्बई प्रान्त, गुजरात तथा हैद्राबाद राज्यके लिये आगामी परीक्षाओंकी तिथि ३१ मार्च तथा १ अप्रैल रक्खी गई है। आवेदन पत्र भरनेकी अन्तिम तिथि १५ फरवरी निश्चित की गई है। केन्द्र स्वीकृति सम्बन्धि आवेदन पत्र १ फरवरी तक केन्द्रीय कार्यालयमें आजाने चाहिये।

२- युक्तप्रान्त, राजस्थान, मालवा, पंजाब, काश्मीर, बिहार, आसाम, तथा मध्यप्रान्तके लिये परीक्षा तिथि ३-४ फरवरी (शनि रवि) सन १९५१ (जैसा की पूर्व निश्चित किया गया था) है। आवेदन पत्र भरनेकी अन्तिम तिथि १५ दिसम्बरसे बढाकर ३० दिसम्बर कर दी गई है। इसी प्रकार केन्द्रस्वीकृतिके लिये १५ नवम्बर तक आवेदन स्वीकृत किये जायेंगे।

३- इस बार 'परिचय' तथा 'विशारद' की मौलिक परीक्षायें स्थगित की गई हैं।

आवेदन पत्र भरनेके अब बहुत थोडे दिन अवशिष्ट रह गये हैं। प्रत्येक केन्द्र व्यवस्थापक एवं संस्कृताध्यापक महानुभावसे विशेष आग्रह पूर्वक निवेदन है कि वे अपने अपने केन्द्रोंसे अधिकसे अधिक परीक्षार्थियोंको सम्मिलित करावें। राष्ट्रके इस महान कार्यमें आप सबका सहयोग अपेक्षित है।

विशेषः- अपने अपने केन्द्रोंके प्रचार कार्य सम्बन्धि विवरण हिन्दी, मराठी एवं गुजरातीमें (स्थानीय प्रचलित भाषामें) प्रतिमास हमारे कार्यालयमें भिजवानेका कष्ट करें। जिससे हम अपने यहाँसे प्रकाशित होनेवाले 'वैदिक धर्म' हिन्दी, 'पुरुषार्थ' मराठी तथा 'वेद सन्देश' गुजरातीमें प्रकाशित करा दिया करें।

हम चाहते हैं कि प्रत्येक केन्द्रसे प्रतिमास संस्कृत प्रचार सम्बन्धि कार्योंका विवरण हमें प्राप्त होता रहे। आशा है कार्यकर्ता महानुभाव इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

विशेष सूचनाः—पुस्तकें मंगानेके लिये 'व्यवस्थापक पुस्तक बिक्री विभाग' को ही कृपया लिखें। ऐसा न होनेसे हमें असुविधा होती है। आशा है ग्राहक महानुभाव इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

स्वाध्यायमण्डल 'आनंदाश्रम'
किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

निवेदक
महेशचन्द्र शास्त्री
परीक्षा-मन्त्री

११	वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् । अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत	५५४
१२	तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते । यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः	५५५
१३	ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः । तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः	५५६
१४	उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे । यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम्	५५७

पराभव करनेका सामर्थ्य बढायेगा वही युद्धमें विजयी हो सकता है ।

१ सूरचक्षसः अग्निजिव्हा ऋतावृधः-- वीर सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निज्वालाके समान जिव्हावाले उत्तम वक्ता और सत्यका संवर्धन करनेवाले हों, ऐसे वीर ही विजयी होंगे ।

[११] (५५४) (ये) जो (शरदं मासं) वर्ष, महिना, (आत् अहः) पश्चात् दिन (आत् अक्तुं यज्ञं च ऋचं) पश्चात् रात्रीको, यज्ञ और मन्त्रको (वि दधुः) धारण करते हैं । वे मित्र वरुण अर्यमा आदि वीर (राजानः) प्रकाशित होकर (अनाप्यं क्षत्रं आशत) अन्योंके लिये अप्राप्य बलको बढाते रहे ।

१ ' अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत ' —शत्रुके लिये प्राप्त होना कठीन ऐसा क्षात्र बल वीरोंको अपने अन्दर बढाना चाहिये ।

२ शरदः, मासं, अहः, अक्तुं, ऋचं, यज्ञं विदधुः- वर्ष महिना, दिन, रात्री, मंत्र और यज्ञ इनका धारण वीरोंको करना चाहिये । वीर समयानुसार कर्म करें, समयका पालन करें, मन्त्रोंको जानें और यज्ञ करें । ऐसे वीर बलवान होते हैं ।

[१२] (५५५) (सूरे उदिते सूक्तैः) सूर्यका उदय होनेके समय सूक्तोंसे (तत् अद्य मनामहे) उस धनकी आज हम प्रार्थना करेंगे (यत्) जिस- को मित्र वरुण अर्यमा आदि (ऋतस्य रथ्यः यूयं) सत्यके पथ प्रदर्शक वीर (ओहते) धारण करते हैं ।

ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे- सत्यके पथ प्रदर्शक वीर जिसको धारण करते हैं उस धनको ही हम चाहेंगे ।

[१३] (५५६) (ऋतावानः ऋतजाताः) सत्यनिष्ठ सत्यके लिये प्रसिद्ध (ऋतावृधः अनृतद्विषः) सत्यको बढानेवाले और असत्यका द्वेष करनेवाले (घोरासः) बडे प्रभावी वीर आप हैं (तेषां वः) वैसे आपके (सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने) उत्तम घरसे युक्त धनके अन्दर हम (सूरयः नरः स्याम) जो विद्वान तथा नेता हैं वे हों, वे हम रहें ।

सत्यनिष्ठ, सत्यके लिये जीवन देनेवाले, सत्यको बढानेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले, और शरीरसे घोर भयंकर ऐसे वीर हों । उनके द्वारा सुरक्षित घरमें हम रहें और उनके द्वारा सुरक्षित धन हमें मिले । हम भी ज्ञानी और नेता बनें । उत्तम वीर नेताके ये विशेषण हैं ।

[१४] (५५७) (त्यत् दर्शतं वपुः) वह दर्शनीय शरीर-सूर्यमंडल (दिवः प्रतिह्वरे) द्युलोकके समीपके मार्गमें (उत् उ एति) उदित हो रहा है । (विश्वस्मै चक्षसे अरं) संपूर्ण विश्वके दर्शनके लिये समर्थ देसे इस सूर्यको (यत् ई एतशः देवः आशु वहति) शीघ्रगामी अश्व चलाता है ।

१५	शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।	
	सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे	५५८
१६	तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्	५५९
१७	काव्येभिरदाभ्या ऽऽ यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये	५६०
१८	दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी	५६१
१९	आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा	५६२

[१५] (५५८) (शीर्ष्णः शीर्ष्णः) सबके मुख्य शिर स्थानीय (तस्थुषः जगतः पतिं) स्थावर जंगमके स्वामी (रथे सूर्यं) रथमें बैठे सूर्यको (सुविताय) विश्व कल्याणके लिये (विश्वं रजः समया) सब लोकोंके समीपसे (स्वसारः सप्त हरितः आ वहन्ति) बहिनें जैसी सात घोडियां चलाती हैं ।

यहां सात घोडियां सूर्यके रथको चलातीं हैं ऐसा कहा है । इससे पूर्व एक ही घोडा सूर्यके एक चक्र रथको चलाता है ऐसा कहा था (६३ सु. २ मं)।

[१६] (५५९) (तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करनेवाला बलवान विश्वका आंख जैसा यह सूर्य (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है । (पश्येम शरदः शतं) उसे हम सौ वर्षतक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेम) हम सौ वर्ष जीये ।

सौ वर्ष जीयें और सौ वर्षतक हमारे आंख आदि इन्द्रिय कर्म करनेमें समर्थ रहें । यह सूर्य (देव-हितं) इन्द्रियोंका हित करनेवाला है । सूर्य प्रकाशसे सब इंद्रियाँ उत्तम अवस्थामें रहती हैं । इसी तरह पृथिवी, जल, वनस्पती, प्राणी, वायु आदि भी सूर्यके कारण उत्तम अवस्थामें रहते हैं । इसलिये सूर्यको देव हित कहते हैं ।

[१७] (५६०) हे (अदाभ्या) न दबनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम (द्युमत्) तेजस्वी देव (सोमपीतये आयातं) सोमपान करनेके लिये आओ ।

(अदाभ्या) शत्रुसे न दबनेवाला और (द्युमत्) तेजस्वी ऐसे हमारे वीर हों ।

[१८] (५६१) हे (अद्रुहा) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण ! और (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले वीरो ! (दिवः धामभिः) द्युलोकके अपने स्थानोंसे (आ यातं) आओ और (आतुजी) शत्रुका नाश करते हुए (सोमं पिबतं) सोमरसका पान करो ।

वीर (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले हों । (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले हो और (आतुजी) शत्रुका नाश करनेवाले हों ।

[१९] [५६२] हे (ऋतावृधा) सत्यको बढाने- वाले (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुणो ! हे (नरा) नेताओ ! (आहुतिं जुषाणौ) आहुतिका स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो ।

वीर सत्यका पालन करें, (नरा) नेता हों, लोगोंको सन्मार्गसे ले जांय । ऐसे वीरोंका सत्कार करना योग्य है ।

॥ यहां मित्रावरुण प्रकरण समाप्त ॥

[६] आश्विनौ-प्रकरण

(६७) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ५६३

२ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ५६४

३ अभि वां नूनमाश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ५६५

[१] (५६३) हे नृपती ! जनताके पालक (धिष्ण्यो) एवं बुद्धिमान अश्विदेवो ! (यज्ञियेन हविष्मता मनसा) पवित्र तथा अन्न दानमें रत ऐसे अपने मनसे (वां रथं प्रति जरध्यै) तुम्हारे रथका वर्णन मैं करूंगा । (यः वां दूतः न अजीगः) जो तुम्हें दूतके समान जगा चुका है, बुला चुका है (सूनुः पितरा न) पुत्र पिताके सामने जैसा बोलता है, उसी प्रकार (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सन्मुख वह मैं विशेष स्पष्ट रीतिसे अपना भाव बोलता हूं। अपना मनोगत प्रकट करता हूं ।

१ नृपती धिष्ण्यौ— मनुष्योंका पालन करनेवाले अत्यंत (धी-सनौ) बुद्धिमान होने चाहिये । बुद्धिहीनोंसे राष्ट्रका पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता ।

२ यज्ञियेन हविष्मता मनसा अच्छ विवक्मि- पवित्र सत्कार करने योग्य तथा अन्न दानमें तत्पर मनसे, अर्थात् शुद्ध मनसे मैं बोलता हूं । शुद्ध मनसे मनुष्योंको वार्तालाप करना चाहिये ।

३ सूनुः पितरा न विवक्मि- पुत्र पिताके सन्मुख जैसा बोलता है, वैसा ही मैं प्रभुके, राजाके या अधिकारियोंके सामने बोलता हूं । क्यों कि मेरा मन पवित्र है ।

४ दूतः अजीगः— दूत जगाता है । दूतका कर्तव्य है कि वह स्वामीको योग्य कर्तव्यकी सूचना समय पर दे ।

*

[२] (५६४) (अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है। (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारका अन्तिम भाग दिखाई दे रहा है। अन्धकार समाप्त हो रहा है। (दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात्) द्युलोककी पुत्री उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी सूर्य (श्रिये अचेति) शोभारूप प्रकाशके लिये प्रकट हो रहा है ।

भगवा ध्वज

इस समय उदय कालका यह सूर्य आरक्त वर्ण होता है, इसको ' केतु ' (ध्वज) कहा है । इससे ध्वज भगवा है यह सिद्ध होता है । यह ध्वज आकाशमें फहराया जा रहा है, इससे शत्रुरूप अन्धकार दूर होता है । भगवे ध्वजका यह प्रभाव है कि वह ऊपर फहरने लगते ही शत्रु दूर भागते हैं ।

[३] (५६५) हे (नासत्या अश्विना) हे असत्यका कभी आश्रय न करनेवाले अश्विदेवो ! (विवक्वान् सुहोता) उत्तम रीतिसे बोलनेवाला उत्तम बुलानेवाला होता (वां अभि) आपके सामने (नूनं स्तोमैः सिषक्ति) निश्चयपूर्वक स्तोत्रोंसे आपकी सेवा करता है । (वसुमता स्वर्विदा रथेन) धनवाले प्रकाशमान रथसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं) प्रथम निश्चित हुए मार्गोंसे ही आगे बढो ।

४ अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ५६६

५ प्राचीमु देवाश्विना धियं मे ऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ५६७

१ नासत्या— (न अ-सत्यौ)—असत्यका आश्रय कभी न करनेवाले । उन्नति चाहनेवाला असत्यका आश्रय कभी न करे।

२ विवक्वान् सु होता—जो विशेष उत्तम वक्ता होगा वह बुलानेका कार्य करे। बडे लोगोंको बुलानेके कार्यके लिये उत्तम वक्ता नियुक्त किया जावे।

३ वसुमता स्वर्विदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं- रथमें धन हो, सुखके सब साधन हों, रथ चालकको मार्गका उत्तम पता हो, तथा सारथी उस मार्गसे रथ ले जावे कि जिसमें पहिले वह गया हो, अथवा अन्य रीतिसे उसको मार्गका पता हो। मार्गकी कठिनताका ठीक तरह ज्ञान न होनेकी अवस्थामें साहससे रथ न चलावे।

[४] (५६६) हे (माध्वी अश्विना) मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां युवाकुः) निश्चय ही तुम रक्षण कर्ताओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाला मैं (यत् वसूयुः) जब धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूँ; तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आवहन्तु) तुमको यहां ले आवें, और यहां आकर (अस्मे हमारे बनाये (सुसुताः मधूनि पिबाथः) भली भान्ति निचोड हुए मीठे सोमरसका पान करें।

[५] (५६७) हे शचीपती देवा अश्विना) शक्तिके अधिपति अश्विदेवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अ मृध्रां प्राचीं धियं) अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये कृतं) धन प्राप्तिके लिये योग्य बना दो। (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं) सब प्रकारकी बुद्धियोंका पूर्णतया रक्षण करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः नः शक्तं) अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बना दो।

१ अश्विनौ—अश्व जिनके पास होते हैं। जिनके पास अच्छे घोडे होते हैं। अश्वारूढ। ये दो देव हैं। इनका मुख्य कार्य रोग दूर करना और आरोग्य प्राप्त करा देना है। इनमें एक औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्र किया करनेवाला है। ये दोनों चिकित्सा करते हैं। ये ' शची पती ' शक्तिके अधिपति हैं। रोग दूर करके आरोग्य और बल देनेकी शक्ति इनके पास सदा सिद्ध रहती है।

१ वसूयुं अ-मृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं— धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली हिंसा रहित सरल बुद्धिको धन प्राप्त करने योग्य बनाओ। 'वसु-यु' -धनके साथ संयुक्त होना हरएक चाहता है। हरएक धनी बनना चाहता है। उसके साथ दो मार्ग आते हैं। एक दूसरेकी (मृध्रा) हिंसा करके, लुटमार करके दूसरोंको कष्ट देकर धन प्राप्त करनेका हिंसाका मार्ग। दूसरा मार्ग अहिंसाका है। सन्मार्ग तथा सद्व्यवहारसे धन प्राप्त करना। धनेच्छु मनुष्यके पास ये दो मार्ग आते हैं। हिंसाका मार्ग प्रलोभनीय है, जो उससे जाते हैं वे फंसते हैं। यह मंत्र कहता है कि (अ-मृध्रां प्राचीं धियं) हिंसा रहित सरलताके व्यवहारका सन्मार्ग आचरण करना चाहिये। अपनी बुद्धि और कर्मशक्तिको इस अहिंसामय सन्मार्गपरसे जानेके लिये प्रवृत्त करना चाहिये। इस मार्गसे जाकर (सातये कृतं) धन प्राप्ति करनेके लिये मनुष्यको प्रवृत्त करना चाहिये।

२ वाजे विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं—युद्धमें सब प्रकारकी नगर संरक्षण करनेकी बुद्धिका संरक्षण करो। ' पुरं धीः '- नगरका संरक्षण करनेकी बुद्धि और तदनुकूल कर्म। आत्मसंरक्षक बुद्धिपूर्वक कर्म; इस बुद्धिका संरक्षण होना चाहिये।

३ शचीभिः नः शक्तं— अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बनाओ। हमारे अन्दर जो शक्तियां हैं वे बढें और उनसे हम महा सामर्थ्यवान बनें। क्योंकि सामर्थ्यवान बननेसे ही धन आदिकी प्राप्ति हो सकती है।

६ अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ५६८

७ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ५६९

८ एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ५७०

---

[६] (५६८) हे अश्वि देवो ! (आसु धीषु नः अविष्टं) इन बुद्धियों और कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो । (नः प्रजावत् रेतः अ-ह्रयं अस्तु) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो । (वां तोके तनये तूतुजानाः) तुम्हें पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) उत्तम रत्नोंको धारण करके हम (देव वीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करें ।

१ धीषु नः अविष्टं—हम बुद्धियुक्त कर्म, बुद्धिपूर्वक कर्म, बुद्धिसे नियोजनापूर्वक कर्म कर रहे हैं । इन कर्मोंको करनेके समय हमारी सुरक्षा होनी चाहिये । कर्म करनेके समय ही हमारा नाश नहीं होना चाहिये । कर्मोंका फल प्राप्त होना चाहिये । इसलिये हमारी सुरक्षा होनी चाहिये ।

२ नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु—हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेमें समर्थ, संस्कारोंसे शुभ संस्कार संपन्न, वीर्य कभी व्यर्थ विनष्ट न हो, कभी क्षीण न हो । वह सदा सुरक्षित रह कर सुप्रजा उत्पन्न करे ।

३ तोके तनये तूतुजानाः—पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये तुम्हें त्वराके साथ प्रवृत्त हम कर रहे हैं । यह कार्य राष्ट्रमें त्वरासे होना चाहिये इसलिये सबको प्रयत्नवान् होना चाहिये ।

५ सु-रत्नासः—उत्तम रत्नोंको हम स्वयं धारण करेंगे और अन्योंको भी धारण करायेंगे ।

५ देववीतिं आगमेम—देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करेंगे, देवोंका सत्कार जहां होता है वहां हम जायंगे । देवत्वकी प्राप्ति करेंगे ।

[७] (५६९) हे (माध्वीः) मधुर भाषण कर्ता अश्विदेवो ! (अस्मे रातः एषः स्यः निधिः) हमने दिया हुआ यह वह भण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिये (पूर्व-गत्वा इव हितः) अग्रगामी वीरके समान तुम्हारे आगे रखा है । (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोध रहित मनसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आ जाओ ।

[८] (५७०) हे (भुरणा) भरणपोषण करनेवाले अश्विदेवो ! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी आगे (परि गात्) बढ जाता है । (ये तरणयः वां धूर्षु वहन्ति) जो तारण करनेवाले घोडे हैं वे (धुराओंमें तुम्हें ढोते हैं । वे (सुभ्वः देवयुक्ताः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न देवोंके द्वारा जोते होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं ।

अश्विदेवोंका रथ चिकित्साका कार्य करनेके लिये सप्त नदियोंके भी पार जाता है । यहां ' तरणयः ' पद है । इसका अर्थ घोडे ऐसा नहीं है । जलमें तैरनेवाले कोई प्राणी होंगे जो जलमें चलनेवाली नौकाको जोडते होंगे, अथवा ये प्राणी भी नहीं होंगे । कदाचित् ये दूसरे कोई साधन होंगे । अश्विदेवोंके रथको (रासभ) गधे जोते जाते हैं ऐसा अन्यत्र मंत्रमें कहा है । खच्चर भी जलमें तैरनेवाला नहीं है । इसलिये ' तरणयः ' पदसे घोडे और खच्चरसे विभिन्न कोई साधन लेने चाहिये । ' तरणयः ' का अर्थ ' तैरनेके साधन ' ऐसा है । ये (न वायन्ति) थकते नहीं ऐसा भी कहा है । न थकना तो यन्त्रके लिये ही हो सकता है । प्राणी कितना भी बलवान हुआ तो भी वह अधिक परिश्रमसे अवश्य थकेगा ही । (तरणयः सु-भ्वः

९	असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।	
	प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि	५७१
१०	नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।	
	धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	५७२

(६८) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । विराट्; ८-९त्रिष्टुप् ।

१	आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।	
	हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः	५७३
२	प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।	
	तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः	५७४

देवयुक्ताः न वायन्ति) तैरनेके साधन अच्छे बने उत्तम कारीगरोंसे जोडे हैं इस लिये वे थकते नहीं । ये यंत्रके साधन ही होंगे, ऐसी हमारी संमति है ।

[९] (५७१) (ये गव्याः अश्व्याः) जो गायों और घोडोंसे परिपूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्यों-का दान करते हुए— (बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते) बन्धुको मधुर वाणीसे दान देते हैं, और (राया मघदेयं जुनन्ति) धनसे युक्त होकर धनका दान करनेके लिये प्रेरित करते हैं, ऐसे उन (मघवद्भ्यः) वैभवशाली लोगोंके लिये (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो । अर्थात् उनके घर जाओ ।

१ गव्याः अश्व्याः मघानि पृञ्चन्तः)—गायों, घोडों और धनोंका बहुत दान करो ।

१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— अपने बान्धवोंके साथ मधुर भाषण करते जाओ । क्रुद्ध भाषण न करो ।

३ राया मघदेयं जुनन्ति मघवद्भ्यः असश्चता भूतं—जो धनसे युक्त हो कर धनका दान करते हैं, उन दानियोंको छोड कर दूसरी जगह न जाओ । उनके पास ही जाओ ।

[१०] (५७२ हे) (युवाना अश्विनौ) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है उसी घरमें जाओ । (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो । (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो।

जहां पर्याप्त अन्न है और जहां दाता है वहीं जाओ । स्वयं रत्नोंका धारण करो । और दूसरोंको दे दो । सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करो । कल्याण करनेके साधनोंसे अपनी सुरक्षा करो ।

[१] (५७३) हे (शुभ्रा स्वश्वा दस्रा) श्वेत-वर्णवाले अच्छे घोडोंवाले शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (युवाकोः गिरः जुजुषाणा) तुम्हारी सेवा करने-वालेके भाषणोंको आदर पूर्वक सुनते हुए (आयातं) यहां आओ ((नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि वीतं) हविर्भागका सेवन करो।

[२] (५७४) (वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः) तुम्हारे लिये आनन्द वर्धक अन्न रखे गये हैं। (मे हविषः वीतये) मेरे हविष्यान्नके आस्वाद लेनेके लिये (अरं गन्त) सीधे यहां आओ। (अर्यः तिरः) शत्रुओंको दूर हटा दो (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ।

हर्षवर्धक अन्नका सेवन करो, उससे अपना बल बढाओ और शत्रुओंको दूर हटादो । शत्रुको दूर करना यह मुख्य कर्तव्य है, इसके लिये उद्यत रहना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

३	प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।	
	अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः	५७५
४	अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।	
	आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः	५७६
५	चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।	
	यो वामोमानं दधते प्रियः सन्	५७७
६	उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।	
	अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः	५७८
७	उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।	
	निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः	५७९

[३] (५७५) हे (सूर्यावसू) सूर्यको बसानेवाले अश्विदेवो! (वां मनोजवाः रथः शतोतिः) आपका मनके समान वेगवान् रथ सैकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त है। वह (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता है और (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलीके प्रदेशोंको दूर रखकर आता है।

रथका वेग अच्छा हो, शीघ्र गतिसे दौडे और उसमें सेकडों संरक्षणके साधन भरपूर रहें।

[४] (५७६) (अयं सोमसुत् अद्रिः ह) यह सोमका रस निचोडनेवाला पत्थर (यत् ऊर्ध्वः देवया) जब ऊंचे पदपर-सोमपर-आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त होता है तब (वां उ युवभ्यां विवक्ति) आप दोनोंकी ओर लक्ष्य देकर विशेष प्रकारका शब्द करता है, तब (विप्रः वल्गू) ज्ञानी याजक सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ वृतीत) हवनीय अन्नोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है।

यज्ञमें सोम कूटनेका पत्थर जब सोम कूटने लगता है तब उसका एक प्रकारका शब्द होता है। वह शब्द मानो देवोंको बुलानेके लिये ही होता है।

[५] (५७७) (यत् वां चित्रं भोजनं अस्ति) जो तुम दोनोंका विलक्षण अन्न रूप दान है, जो (अत्रये महिष्वन्तं, नियुयोतं) अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था। (यः प्रियः सन्) वह तुम्हारा प्रिय था इस लिये (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आश्रयसे रहता है।

अत्रि ऋषि असुरोंके कारावासमें रहनेके कारण बहुत कृश हुआ था, उसको बलवान और पुष्ट बनानेके लिये अश्विदेवोंने एक प्रकारका विलक्षण पुष्टिकारक अन्न दिया था, जिससे अत्रि ऋषि फिरसे बलवान् बने और कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंको ऐसे पौष्टिक अन्न बनाने चाहिये।

[६] (५७८) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (हविर्दे जुरते च्यवनाय) हवि देनेवाले वृद्ध च्यवन ऋषिके लिये (वां त्यत् प्रतीत्यं भूत) तुम्हारा वह उसके पास जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जो कि (इत ऊती वर्पः) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप तुमने उसे (अधि धत्थः) दे दिया।

च्यवन ऋषि अति वृद्ध हुआ था, उसके पास अश्विदेव गये, और उनको पौष्टिक अन्न, जो च्यवनप्राश नामसे आयुर्वेदमें प्रसिद्ध है, दिया और उसको पुनः तारुण्य दिया।

[७] (५७९) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले उसके मित्र उसे (समुद्रे मध्ये जहुः) समुद्रके मध्यमें छोड चुके थे (यः युवाकुः अरावा) जो तुम्हारे पास सहायार्थ आने

८ वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ५८०

९ एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८१

(६९) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ५८२

लगा था, इतनेमें (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चलो और सुरक्षित स्थानपर तुमने उसे पहुंचा दिया था ।

राज पुत्र भुज्यु समुद्रमें डूब रहा था, उसको अश्विदेवोंने समुद्रसे उठाया और उसे समुद्रके पार उसके घर पहुंचा दिया ।

[८] (५८०) हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके हितके लिये तुम शक्तिका दान देनेमें (शक्तं) समर्थ हुए, (उत) और (हूयमानां शयवे श्रुतं) बुलानेपर शयुका हित करनेके लिये उसकी प्रार्थना तुमने सुनी थी। (यौ शचीभिः शक्ती) जो तुम दोनों अपनी शक्तियोंसे समर्थ होनेके कारण (स्तर्यं अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलके समान (अपिन्वतं) दूध देनेवाली दुधारू बना चुके ।

अश्विदेवोंने वृककी सहायता की, शयुकी प्रार्थना सुनी और वन्ध्या गौको दुधारू बना दिया ।

[९] (५८१) (स्यः एषः सुमन्मा कारुः) वह यह उत्तम मननशील कारीगर (उषसां अग्रे बुधानः) उषः कालके पहिले जागृत होकर (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रार्थना करता है । (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको बढाती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें कल्याणकारक साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो।

कारीगर उषः कालके पूर्व उठे और अपने इष्ट देवकी उपासना करे । जो क्षीण होते हैं उनको गौ अपने दूधसे पुष्ट करती है । इसलिये मनुष्य गौका दूध पीवे ।

[१] (५८२) (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय (घृतवर्तनिः) घृतको मार्गमें देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगाता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको पहुंचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) आकाश और पृथिवीको अपने शब्दसे निनादित करता हुआ (वृषभिः अश्वैः आ यातु) बलिष्ठ घोडोंसे चलाया जानेवाला इधर आ जाय ।

चिकित्सकका रथ सुवर्णसे सुशोभित हो, उत्तम वर्णवाला हो, घी तथा पौष्टिक अन्न उसमें भरपूर हो, जो रोगियोंको देनेसे उनकी पुष्टी हो सकती हो, ऐसा रथ शीघ्रगतिसे हमारे पास आजाय और हमें नीरोग करे ।

इस वर्णनसे ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विदेवोंका रथ नाना प्रकारके औषधियोंसे मिश्रित घृत, तथा पौष्टिक अन्नोंसे तथा चिकित्साके साधनोंसे भरपूर भरा था । अश्विदेव इस रथमें बैठकर स्थान स्थानपर जाते थे और उनकी चिकित्सा करते थे और उनको पौष्टिक अन्न देते थे । रोगियोंको उनके दवाखानेमें आनेकी आवश्यकता नहीं थी । इनका रथ ही रोगीके स्थानपर जाता था। और रोगीकी चिकित्सा करता था । यह सुविधा थी। अश्विदेवोंका कार्यालय किसी स्थानपर होगा, पर उनके रथ जगतमें घूमते थे और रोगियोंको आरोग्य देते थे ।

(रोदसी बद्बधानः) उनका रथ बडा शब्द करता हुआ आकाशको भर देता था । यह शब्द इसलिये किया जाता था कि रोगियोंको मालूम हो कि चिकित्सकका रथ आरहा है। रोगी तैयार रहे और लाभ उठावे ।

२ स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना ५८३

३ स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ५८४

४ युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ५८५

५ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ५८६

६ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ५८७

---

[२] (५८३) हे अश्विदेवो! (कुत्राचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका आरंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर लट्ठोंसे युक्त (पञ्च भूमा पप्रथानः) पांचोंको विस्तृत स्थान देनेवाला (मनसा युक्तः अभि यातु) मनके इशारेसे चलनेवाला तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर यहां आ जावे।

यह रथ पांच बैठनेवालोंको विस्तृत स्थान देता है। इसमें तीन बैठकें हैं, और मनके संकेतसे जहां चाहे वहां जाता है।

[३] (५८४) हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो! (स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं) उत्तम घोडोंको जोत कर यशके साथ हमारे समीप आओ। यहां आकर (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मीठा सोमरस पीओ। (वां रथः वध्वा यादमानः) आपका रथ वधूके साथ आगे बढता है और (वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् विबाधते) पहियोंसे आकाशके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है।

[४] (५८५) (सूरः दुहिता योषा) सूर्यकी पुत्री तरुणी उषा (परि तक्म्यायां) रात्रीके समय (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभाको बढानेवाले रथपर बैठ गयी। (यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः) देवोंको चाहनेवालेको अपनी शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हैं।

सूर्यकी पुत्री अश्विदेवोंके रथपर बैठती है ऐसा वर्णन वेदमें अन्यत्र भी है। विशेष कर विवाह सूक्तमें है। (ऋ. १०।८५)। 'देवयन्' स्वयं देव बननेकी इच्छावाला। देवके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेवाला। नरका नारायण बननेकी इच्छा वाला। इस तरह अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषकी अश्विदेव (शचीभिः अवथः) अपनी अनेक शक्तियोंसे सुरक्षा करते हैं। अर्थात् उन्नतिका प्रयत्न करनेवालेकी सुरक्षा होती है, वैसी उन्नत्यर्थ प्रयत्न न करनेवालेकी सुरक्षा नहीं होती।

[५] (५८६) हे (रथिरा) रथमें बैठनेवाले वीरो! (यः वां स्यः रथः) जो तुम्हारा वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर मार्गसे घरको पहुंचता है, (तेन) उस रथसे, हे अश्विदेवो! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः नि वहतं) हमारे लिये शान्तिकी प्राप्ति और दुःखे वियोग कराओ।

हमें शान्ति सुख चाहिये और हमारे दुःख दूर होने चाहिये।

[६] (५८७) हे (नरा) नेता अश्विदेवो! (अद्य अस्माकं सवना उपयातं) आज हमारे यज्ञके पास आ जाओ। (तृषाणा विद्युतं गौरा इव) और

७ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ५८८

८ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८९

(७०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनः पृष्ठो अस्थादा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ५९०

२ सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान् त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ५९१

प्यासे तुम दोनों चमकनेवाले सोमरसको गौर मृगके तुल्य जल्दी जल्दी पी जाओ। (वां पुरुत्रा हि) तुम दोनोंको सचमुच अनेक स्थानोंपर (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक बुलाते हैं। (अन्ये देवयन्तः) दूसरे देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग (वां मा नियमन्) आपको वहीं न रोक रखें।

[७] (५८८) हे अश्विदेवो! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः) क्षीण न होनेवाले, जिनमें श्रम नहीं होते और जिनमें बैठनेसे कष्ट नहीं होते ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षीके समान उडनेवाले विमानोंसे और (दंसनाभिः पारयन्ता) क्रियाओंसे पार करनेवाले (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रके जलसे ऊपर उठाकर पहुंचा चुके।

भुज्यु समुद्रमें गिरा था, अश्विदेवोंने उसे समुद्रसे ऊपर उठाया, अपने पक्षी सदृश विमानोंमें उसे बिठलाया और समुद्रके पार उसके घर पहुंचाया।

[८] (५८९) यह मंत्र ५७२ इस क्रमांकमें है वहीं उसका अर्थ पाठक देखें।

[१] (५९०) हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे श्रेष्ठ अश्विदेवो! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) पृथिवी पर तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) बडा प्रशंसित हुआ है। वहांसे (नः आगतं) हमारे पास आओ, और (यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः) इस आसनपर स्थिर बैठनेके लिये, अपने निज स्थानपर बैठनेके समान, तुम बैठो, वह स्थान (शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः न) जिसकी पीठपर बैठना सुखदायी हो ऐसे बलिष्ठ घोडे के समान यहां (अस्थात्) रखा है। यहां बिछाया है।

[२] (५९१) (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिषक्ति) आपकी सेवा करती है। (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (घर्मः अतापि) अग्नि प्रदीप्त हुआ है। (यः सुयुजा युजानः) जो उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित्) घोडेके समान (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपर्ति) समुद्रों और नदियोंको पूर्ण करता है।

याजकोंकी उत्तम बुद्धि स्तोत्र पाठसे अश्विदेवोंकी सेवा कर रही है। अग्नि प्रदीप्त हुआ है, यज्ञ शुरु हुआ है। वह यज्ञ अश्विदेवोंके पास हवि पहुंचता है और वे संतुष्ट हुए देव वृष्टी द्वारा नदियोंको भर देते हैं जो नदियां समुद्रको मिलती हैं।

३	यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु । नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता	५९२
४	चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद् योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् । पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि	५९३
५	शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् । प्रति प्र यातं वरमा जनायाऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा	५९४
६	यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति । उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम्	५९५

[३] (५९२) हे अश्विदेवो! (दाशुषे जनाय) दानी पुरुषके लिये तुम (इषं वहन्ता) अन्न पहुंचाते हैं। और (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाडके शिखर पर (नि सदन्ता) बैठते हैं। (दिवः यह्वीषु ओषधीषु) द्युलोककी बडी सोम आदि औषधियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाजनोंमें (यानि स्थानानि दधाथे) यज्ञ स्थानोंका धारण करते हैं।

पर्वत शिखरपर सोम आदि औषधियां होती हैं, उनको लाकर उनका यजन करते हैं, अश्विदेव पर्वत शिखर पर जाते, उन औषधियोंको लाते और लोगोंको सुख पहुंचाते हैं।

[४] (५९३) हे (देवा) अश्विदेवो! (यत् ऋषिणां योग्याः) जो ऋषियोंके योग्य अन्न (अश्नवैथे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु अप्सु चनिष्टं) औषधियोंमें जलमें सेवनीय अन्न (अस्मे) हमें दो। और (पुरूणि रत्नानि नि दधतौ) अनेक रत्न भी हमें दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समान इन युगोंको (अनुचख्यथुः) अनुकूल दीखने योग्य बना दो।

इस मंत्रमें वर्णन किया अन्न औषधियों और जलसे बननेवाला है। अर्थात् शाक भोजन ही है। मांस नहीं है। यहां 'पूर्व युग' कहे हैं, उससे 'उत्तर युग' अथवा 'नये युग' सूचित होते हैं।

[५] (५९४) हे अश्विदेवो! (ऋषीणां पुरूणि ब्रह्माणि) ऋषियोंके बहुतसे स्तोत्र (शुश्रुवांसः चित्) सुनते हुए (अभि चक्षाते) तुम सबका निरीक्षण करते हो। तथा (वरं प्रति आ प्रयातं) श्रेष्ठ मनुष्य के प्रति आते हो। (अस्मे जनाय) इस मनुष्यके लिये (वां सुमतिः) तुम्हारी बुद्धि (चनिष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो जाय।

जो मनुष्य श्रेष्ठ होता है उसको अश्विदेवोंकी सहायता मिलती है।

[६] (५९५) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो! (वां यः यज्ञः हविष्मान्) तुम्हारा जो यज्ञ हविष्यान्नसे युक्त है, (कृतब्रह्मः समर्यः भवाति) स्तोत्र निर्माण करके जिसने मनुष्योंको इकट्ठा किया है। उस (वरं वसिष्ठं) श्रेष्ठ जनोंको बसानेवाले यज्ञ कार्यके (उप प्र आ यातं) समीप तुम जाते हैं क्यों कि (युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) तुम्हारे वर्णन करनेके लिये ही ये स्तोत्र होते हैं।

यज्ञमें अश्विदेवोंका वर्णन किया जाता है, उन स्तोत्रोंको पढकर यज्ञ होते हैं, यज्ञसे मानवोंकी संघटना होती है। श्रेष्ठ पुरुषोंको बसाया जाता है, ग्रामोंका निर्माण होता है, मानवोंका परस्पर व्यवहार होता है। इस तरह यज्ञ उन्नति करते हैं।

७ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५९६

अनुवाक पांचवाँ [अनुवाक ५५ वाँ]

(७१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ ५९७

२ उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ ५९८

३ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ५९९

---

[७] (५९६) (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिका तुम स्वीकार करो। क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचलित हुवे हैं। (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो।

[१] (५९७) (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपाजिहीते) अपनी बहन उषासे दूर हटती हैं। (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) काली रात्री मार्ग खुला कर देती है। (अश्वामघा गोमघा वां हुवेम) घोडों और गौओंके रूपमें वैभवको देनेवाले (वां हुवेम) आपको हम बुलाते हैं। (दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोतं) दिन रात घातक शत्रुको हमसे दूर कर दो।

उषासे रात्री पृथक् होती है, रात्रीसे सूर्यके लिये मार्ग खुला किया जाता है और वह अन्धकारको दूर करके दिनको प्रवृत्त करता है, गौवों और घोडोंके रूपमें वैभव प्राप्त होकर निर्धनता दूर होती है, उस तरह हमारे शत्रु हमसे दूर हों और हम निर्भय होकर उन्नत होते रहें।

[२] (५९८) हे (माध्वी) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवो ! (रथेन वामं वहन्ता) रथसे सुन्दर धन या अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप आयातं) दानी मनुष्यके समीप आओ, (अस्मत् अनिरां- अन्+इरां) हमसे अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगोंको दूर करो। (नः दिवा नक्तं त्रासीथां) हमारा दिन रात रक्षण करो।

अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न और धनको रख कर हमारे पास आजायें और हमारे अन्नके अकालको दूर करें और हमसे सब रोगोंको दूर करें। और हमारा संरक्षण करें।

[३] (५९९) (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाका उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान और सुखसे चलनेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे रथको हमारे समीप (आवर्तयन्तु) ले आवें। हे अश्विदेवो ! (ऋत-युग्भिः अश्वैः) सरलतापूर्वक जोते जानेवाले घोडोंसे (स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं) तेजस्वी तथा धनवाले रथको (आ वहेथां) इधर ले आओ।

उषःकालमें उठो, बलवान् और उत्तम घोडे रथको जोतो, और उस रथमें बैठकर जनताके स्थानपर आओ और धेन, अन्न आदि उनको देकर उनको सुखी करो।

४	यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।	
	आ न एना नासत्योप यातमभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति	६००
५	युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।	
	निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः	६०१
६	इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।	
	इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	६०२

(७१) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१	आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।	
	अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना	६०३
२	आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।	
	युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम्	६०४

[४] (६००) हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और पालक अश्विदेवो ! (वां यः रथः वसुमान्) तुम्हारा जो रथ धन युक्त और (उस्रयामा) प्रातः कालमें जानेवाला है तथा (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बन्धनोंवाला और स्थानपर शीघ्र पहुंचनेवाला है, (एना नः उपयातं) इससे हमारे पास तुम आओ, (यत् विश्वप्स्न्यः) जो सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र यहां लाता है।

अश्विदेव मनुष्योंके रक्षक हैं और सत्यके पालक हैं। उनके रथपर धन रहता है। सवेरे उनका तीन बैठकों वाला रथ चलता है, वह हमारे पास आजाय और हमारा संरक्षण करे।

[५] (६०१) तुमने (जरसः च्यवानं अमुमुक्तं) बुढापेसे च्यवन ऋषिको मुक्त किया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे निरूहथुः) पेदु नरेशके पास पहुंचा दिया। (अत्रिं तमसः अंहसः निष्पर्तं) अत्रिको अन्धेरेसे और कष्टके स्थानसे दूर किया, और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) जाहुष नरेशको भ्रष्ट हुए उसके राज्यपर पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया।

वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया, उत्तम घोडा पेदुको दिया, अत्रि ऋषिको अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावाससे मुक्त किया, जाहुषको उसके शिथिल हुए राज्यपर पुनः बिठला दिया। ये कार्य अश्विदेवोंने किये हैं।

[६] (६०२) यह मंत्र ५९६ क्रमांकपर है, वहां इसको पाठक देखें।

[१] (६०३) हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो ! (गोमता अश्वावता) गायों और घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी शोभासे युक्त रथसे (आ यातं) यहां आओ। (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना) उत्तम शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हारी (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सब घोडे सेवा करते हैं।

अश्विदेव सत्यपक्षका रक्षण करते हैं। उनके पास बहुत गौवें और घोडे हैं। वे तेजस्वी रथसे आते हैं। उनका शरीर सुन्दर है और उत्तम धन उनके पास है। वे हमारा संरक्षण करें।

[२] (६०४) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (देवेभिः सजोषसः) देवोंके साथ रहकर (नः अर्वाक्) हमारे पास (रथेन उप आयातं) रथसे आओ। (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (पित्र्याणि सख्या) पितृपरंपरासे

३ उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
अविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ६०५

४ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ६०६

५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६०७

(७३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ६०८

मित्रता है। (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बन्धुभाव भी समान है, (तस्य वित्तं) उसको तुम जानते हैं।

' पित्र्याणि सख्यानि ' —कुल परंपरासे सख्य होना उपकारक होता है। ' समानः बन्धुः ' —भाईचारा भी समान होना चाहिये। ये संबंध मानवताकी ऊंचाई बढानेवाले हैं।

[३] (६०५) (अश्विनोः स्तोमासः) अश्वि-देवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) ये बुद्धिमान द्यु और पृथिवि लोगोंकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी ऋषि (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्यपालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है।

अश्विदेवोंके स्तोत्र उषः कालमें गाये जाते हैं, जिससे बन्धु बांधव जाग्रत होते हैं और पश्चात् यज्ञका प्रारंभ होता है।

[४] (६०६) हे अश्विदेवो ! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) उषाएँ अन्धेरा हटा दें तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्र स्तुतिकर्ता भर देते हैं, गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव ऊंचे स्थानमें जाता हुआ प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बहुत प्रशंसित— प्रदीप्त होते हैं।

सूर्य उदय होते ही अग्नि प्रज्वलित करते हैं और समिधा आदिका हवन शुरू हो जाता है।

[५] (६०७) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे, (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे अथवा आगेसे (आयातं) आओ। (पाञ्चजन्येन राया) पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणकारक साधनोंसे सदा संरक्षण करो।

[१] (६०८) (देवयन्तः स्तोमं प्रतिदधानाः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए स्तोत्रका धारण करते हैं, (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धेरेके पार हम चले गये हैं। (गीः) हमारी वाणी (पुरु-दंसरा पुरु-तमा) बहुत कार्य करनेवाले और बडे (पुरा- जा अमर्त्या अश्विना) पूर्वकालसे प्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है। इनका वर्णन हमारी वाणी करती है।

हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, इस तरह अन्धेरी रात्र समाप्त हुई है, अब उषः काल हुआ है और इस समय अश्विदेवोंकी स्तुति होती है।

२ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान ६०९

३ अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथात् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ६१०

४ उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ६११

५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६१२

(७४) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ६१३

---

[२] (६०९) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यः यजते वन्दते च) जो यज्ञ करता है और प्रणाम करता है । ऐसा वह (होता मनुषः प्रियः नि सादि) होता मनुष्योंमें प्रिय होकर यज्ञ स्थानमें बैठ गया है । तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीत) समीप जाकर मधुर सोम रस पीओ (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आवोचे) आप दोनोकी स्तुति करता हूं ।

यज्ञ शुरू हुआ । मानवोंका हितकर्ता याजक यज्ञमें प्रवृत्त हुआ है । अश्विदेवोंको सोमरस दिया है और हविष्यान्न लेकर स्तोता लोग स्तोत्रपाठ पूर्वक यज्ञ करते हैं ।

[३] (६१०) हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस स्तुतिका सेवन करो । (त्वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा हुआ (जरमानः वसिष्ठः) स्तुति करनेवाला वसिष्ठ ऋषि (श्रुष्टीवा इव) शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है । (पथां उराणाः यज्ञं अहेम) मार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम अब यज्ञको संपन्न करते हैं ।

एकाग्र मनसे स्तुति करनेवाला ऋषि स्तोत्र पाठ करता है । यज्ञकी क्रियाको साथ साथ करता है ।

[४] (६११) (त्या वह्नी वीळुपाणी) वे ढोनेवाले सुदृढ हाथोंसे युक्त (रक्षो-हणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और धनको लानेवाले अश्विदेव (नः विशं उपगमतः) हमारी प्रजाकी ओर आते हैं । और अब (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनंद देनेवाले सोमरस मिलाये गये हैं इसलिये तुम (नः मा मर्धिष्टं) हमारा कष्ट न बढाओ और शीघ्र (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ । और सोमरस पीओ ।

[५] (६१२) यह मंत्र क्रमांक ६०७ के स्थानपर आया है । पाठ इसका अर्थ वहां देखें ।

[१] (६१३) हे (वाजिनी-वसू उस्रा) शक्तिरूप धनसे युक्त और प्रकाशमान अश्वि देवो ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोकमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त (वां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं । (अवसे अयं वां अह्वे) अपनी सुरक्षाके लिये यह मैं तुम्हे बुलाता हूं । क्योंकि (विशं विशं हि गच्छथः) तुम दोनों प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ।

शक्तिसे संपन्न बनो, शक्ति ही धन है । द्युलोकके योग्य बनो और सुरक्षाका प्रबंध करो । प्रत्येक प्रजाजनके पास आकर उनका संरक्षण करो ।

२	युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते । अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु	६१४
३	आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्	६१५
४	अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः । मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना ऽऽ देवा यातमस्मयू	६१६
५	अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः । ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या	६१७

[२] (६१४) हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विलक्षण प्रकारका बलवर्धक भोजन (ददथुः) देते हैं। और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सत्य भाषण करनेवाले मनुष्य को प्रेरित करो तथा (समनसा रथं अर्वाक् नियच्छतं) एक मनसे अपने रथको हमारे समीप रोक कर रखो और यहां (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ।

नेता अपने अनुयायियोंको विविध प्रकारका पौष्टिक अन्न दे और उनका बल बढावें तथा उनको सन्मार्गकी और प्रवृत्त करें।

[३] (६१५) हे (जेन्या-वसू वृषणा) धनोंको जीतनेवाले बलवान् अश्विदेवो ! (आ यातं) इधर आओ, (उप भूषतं) अलंकृत होओ। (मध्वः पिबतं) मधुर रसका पान करो। (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट न दो, (आ गतं) आओ और (पयः दुग्धं) दूधका दोहन किया है, उसका सेवन करो।

अतिथिका आदर करनेकी यह रीति है।

[४] (६१६) (वां ये अश्वासः) आपके जो घोडे (बिभ्रतः युवां) रथका धारण करनेवाले तुम्हें (दाशुषः गृहं) दाताके घर तक (उप दीयन्ति) पहुंचा देते हैं। हे (नरा) नेता अश्वि देवो ! तथा (देवा) देवतारूप तुम दोनो (अस्मयू) हमारी ओर आनेकी इच्छा करनेवाले होकर उन (मक्षूयुभिः हयेभिः) शीघ्र गामी घोडोंसे (आयातं) यहां आओ।

[५] (६१७) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्वि देवो ! (अधा सूरयः) अब विद्वान् लोग (यन्तः पृक्षः सचन्त) प्रयत्न करनेपर अन्न प्राप्त करते ही हैं। (मघवद्भ्यः अस्मभ्यं), धनिक बने हम लोगोंको (ता) वे तुम दोनों (छर्दिः) उत्तम घर और (ध्रुवं यशः) स्थिर यश (यंसतः) दे दो।

१ यन्तः सूरयः पृक्षः सचन्त—प्रयत्न करनेवाले ज्ञानी अन्न तथा भोग प्राप्त करते ही हैं। ज्ञानी बनना और यत्न करना चाहिये जिससे अन्न प्राप्त होता है।

२ मघवद्भ्यः छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः—धनी बने लोगोंको उत्तम घर और स्थायी यश मिलना चाहिये। मनुष्य (सूरयः) ज्ञान प्राप्त करे, (यन्तः) प्रयत्न करे, (पृक्षः सचन्त) धन अन्न आदि प्राप्त करे।, (मघवद्भ्यः) धनवान होनेपर (छर्दिः) घर बनावे और (ध्रुवं यशः) स्थायी यश प्राप्त करे।

६ प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ६१८

[७] उषा-प्रकरण

(७५) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ व्यु१षा आवो दिविजा ऋतेनाऽऽविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ६१९

[६] (६१८) (ये जनानां नृपातारः) जो लोगोंके पालक हैं और (अ-वृकासः) क्रूर कर्म करनेवाले नहीं हैं, वे (रथाः इव) रथोंके समान (प्र ययुः) आगे बढते हैं। (उत नरः) तथा वे नेता (स्वेन शवसा) अपने निज बलसे (शूशुवुः) बढते और (उत सुक्षितिं क्षियन्ति) वैसे ही वे अच्छे निवास स्थानमें रहते हैं।

१ जनानां नृपातारः अवृकासः— लोगोंके लोकपालक क्रूर न हों। जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंको ही प्रजापालनके कार्यपर नियुक्त करना चाहिये।

२ अवृकासः नृपातारः प्र ययुः– जो क्रूर नहीं हैं ऐसे मनुष्योंके रक्षक अधिकारी प्रगति करते हैं, वेही उन्नति प्राप्त करते है।

३ अवृकासः जनानां नृपातारः स्वेन शवसा शूशुवुः—जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंके संरक्षक वीर अपने निजबलसे बढते जाते हैं। उनकी उन्नतिमें कोई भी रुकावटें खडी नहीं कर सकता।

४ अवृकासः जनानां नृपातारः स्वेन शवसा सुक्षितिं क्षियन्ति—जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंको पालक अपने निजबलसे अपने लिये उत्तम निवास स्थान प्राप्त करते और उसमें आनन्द प्रसन्न होकर निवास करते हैं।

॥ यहां अग्निदेव प्रकरण समाप्त ॥

यहांसे उषाका वर्णन प्रारंभ हो रहा है।

[१] (६१९) यह (उषाः दिविजाः वि आवः) उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे प्रकाशने लगी है। वह उषा (ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना) तेजसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई (आ अगात्) आ रही है। वह (द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः) शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और (अंगिरस्तमा पथ्याः अजीगः) चलनेके मार्गोंको प्रकाशित करती है।

१ दिविजाः ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वानाः आ अगात्—दिव्य भाववाले, सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करते हुए आते हैं। जो सहज स्वभावसे महिमाको प्रकट करते हैं वे दिव्य कहे जाते हैं। सहज ही से श्रेष्ठोंकी महिमा प्रकट होती है।

२ द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः—वह (उषा) दुष्ट, चोर आदिको तथा अप्रिय अन्धकारको दूर करती है। अन्धकारके समय चोर, डाकू, दुष्ट आदिका उपद्रव होता है। प्रकाश आते ही वह उपद्रव दूर होता है।

३ अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः—अपने प्रकाशसे उषा लोगोंके चलने फिरनेके मार्गोंको प्रकट करती है। उषःकालमें लोग उठते हैं और मार्ग दीखनेके कारण चलने फिरने लगते हैं।

उषा दिव्य स्त्री है। दिव्य गुणोंके साथ वह प्रकट हुई है। वह उषा सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करती है, उस तरह स्त्रियां दिव्य गुण स्वभाववाली हों और उनके सहज स्वभावसे उनकी महिमा प्रकट होती रहे। वे स्त्रियां अपने प्रभावसे द्रोहियों, दुष्टों और अपकारियोंको दूर करें, अज्ञानान्धकारको दूर करें, प्रकाशका मार्ग दिखावें, जिससे लोग जांय और अपने प्राप्तव्य स्थानको प्राप्त करें।

२ महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ ६२०

३ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ६२१

यह मन्त्र मनुष्योंको सर्व साधारणतया उपदेश देता है कि वे मनुष्य दिव्य गुण कर्म स्वभावके द्वारा अपनी महिमाका प्रकट करें, समाजमें कुव्यवहार करनेवाले समाज-द्रोहियोंको दूर करें, समाजसे अज्ञानान्धकारको दूर करें और ज्ञानको चारों ओर फैलावें। सबको ज्ञानवान् बनानेमें अपने कर्तव्यका भाग स्वयं करें और सबको अपना योग्य मार्ग दीखे ऐसा करें। ज्ञानसे परिशुद्ध हुए मार्गसे ही सब मनुष्य जाय अज्ञानसे द्रोहियोंके मार्गसे कोई न जावे।

यहां उषाके वर्णनके मिषसे स्त्रियों और पुरुषोंके कर्तव्योंका उपदेश किया है।

[२] (६२०) (अद्य नः महे सुविताय बोधि) आज हमारे बडे सुखके लिये जागो। हे (उषः) उषा देवी! हमें (महे सौभगाय प्र यंधि) बडे सौभाग्यका प्रदान कर। तथा (चित्रं यशसं रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे। हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो।

१ **महे सुविताय बोधि**— विशेष सुविधा, सुखमयी अवस्था उत्पन्न करनेके लिये जागती रहो, जागो और प्रयत्न करो। विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये जागना और यत्न करना योग्य है।

२ **महे सौभगाय प्र यन्धि**—विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यत्नवान होना चाहिये। विशेष भाग्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

चित्रं यशसं रयिं धेहि—विलक्षण श्रेष्ठ यशस्वी धन प्राप्त होना चाहिये। जिससे यशकी हानि होती हो वह धन नहीं चाहिये।

४ **हे मानुषि देवि ! मर्तेषु श्रवस्युं धेहि**—हे मानवोंका हित करनेवाली देवी! तू मनुष्योंको ऐसा पुत्र दे कि जो यशस्वी तथा अन्नवान् हो। अन्न प्राप्त करनेवाला हो।

ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे मनुष्योंको हरएक प्रकारकी सुविधा होती जाय, सौभाग्य प्राप्त होता रहे, उनको यश और धन मिले तथा ऐसा पुत्र हो कि जो यश, धन और अन्न कमानेवाला हो। अयशस्वी निर्धन और अन्नहीन न हो।

स्त्रियोंकी योग्यता

'**मानुषि देवि**' (मानुषी देवी) ये पद यहां स्त्रियोंके विशेष कर्तव्यका बोध कराते हैं। स्त्रिया मानवोंका हित करनेवाली हों। स्त्रियोंमें इतनी योग्यता हो कि जिससे वे मानवोंका हित करनेमें समर्थ हों। वे ऐसा सुपुत्र निर्माण करें कि जो यशस्वी धनवान् और अन्न कमानेवाला हो।

[३] (६२१) (दर्शतायाः उषसः) दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं। वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंको निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं।

१ **उषासः दर्शतायाः भानवः आ अगुः**—सुन्दर उषाके सुंदर किरण फैल रहे हैं। इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, सुन्दर लाल, पीले वर्णोंवाले कपडे पहनें और अधिक सुन्दर बनकर अपने सौंदर्यका प्रकाश फैलाएँ। उषाके समान स्त्रियाँ आकर्षक तथा रमणीय हों।

२ **अमृतासः चित्राः भानवः आ अगुः**—गतिमान चित्र विचित्र रंगोंवाले किरण उषःकालमें फैल रहे हैं। उषाके समान स्त्रियां चित्रविचित्र रंगोंवाले वस्त्र पहनें, आभूषण धारण करें और त्वरासे तथा स्फूर्तिसे अपने कार्यमें लगें। अपना तेज फैलाएं।

३ **दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः**— दिव्य व्रतोंका पालन

४ एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ६२२

५ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ६२३

करें । उत्तम व्रतोंका आचरण करें । दिव्यभाव प्रकट करनेवाले कर्म करें । स्त्रियोंको दिव्य व्रतों नियमों और कर्मोंको पालन करना चाहिये । यह उपदेश स्त्रीपुरुषोंको समान है । दिव्य श्रेष्ठ भाव प्रकट होनेके लिये इसकी आवश्यकता है ।

४ अन्तरिक्षा आ पृणन्तः वि तस्थुः--अन्तरिक्षमें अपने तेजको भरपूर भर देती हैं ऐसी उषाएं हैं । स्त्रियोंको भी उचित है कि वे लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपने विषयका पूज्य भाव स्थापन करें और विशेष नियमोंसे विशेष रीतिसे स्थिर रहें, (वि तस्थुः) विशेष स्थान प्राप्त करें और उसी स्थानमें स्थिर रहें, चञ्चल न हों । इधर उधर अयोग्य मार्गसे कदापि न जांय । दिव्य व्रतोंका धारण इसीलिये करना चाहिये कि जिससे उनमें श्रेष्ठता स्थिर रूपसे रहे और चञ्चलता दूर हो । सब लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भरपूर भर दें ताकि कोई उनका अपमान कदापि न कर सके ।

[४] (६२२) (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी पञ्च क्षितीः युजाना सद्य परि जिगाति पांचो मानवोंको उद्यममें लगाती हुई उनके पास पहुंचती है । (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है ।

१ पञ्च क्षितिः युजाना—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद् इनको कार्यमें लगाती है । स्वयं (पराकात्) दूर रहती है, परंतु सब मानवोंको दूरसे ही कार्यमें प्रवृत्त करती है इसी तरह स्वयं पृथक् द्रष्टारूप रहकर सब जनोंको सत्कर्ममें लगाना चाहिये ।

२ सद्यः पञ्च क्षितीः परि जिगाति—तत्काल वह स्वयं सब प्रकारके पांचों मानवोंके पास पहुंचती है और उनको सत्कर्मकी प्रेरणा देती है ।

३ जनानां वयुना अभिपश्यन्ती- लोगोंके सब कामों-को देखती है, सबोंके कर्मोंका निरीक्षण करती है । कौन अच्छा करता है और कौन बुरा करता है इसका निरीक्षण करती है ।

४ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी—यह दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है । यहां भुवनका पालन करनेवाली उषा है ऐसा कहा है । यह उषा द्युलोककी दुहिता है । यह सबकी पालना करती है । पिता द्युलोकके समान तेजस्वी हो यह यहां सूचित होता है । तेजस्वी पिताकी यह पुत्री सुशिक्षासे संपन्न होकर त्रिभुवनके राज्यका पालन करती है ।

पुत्रीकी शिक्षा

पुत्रीकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, इसका उत्तर इस मंत्रमें दिया है । प्रथम पुत्रीका पिता द्युलोकके समान तेजस्वी चाहिये । यह आनुवंशिक संस्कार है । पश्चात् वह पुत्री भी स्वयं उषाके समान तेजस्विनी चाहिये, नाना वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर, विद्यासे संपन्न होकर जनताको नाना कार्योंमें प्रवृत्त करे, उनके कर्मोंका निरीक्षण करे और सब राष्ट्रका पालन करे । इतनी चतुर तथा कर्तव्यदक्ष पुत्री होनी चाहिये । इस सूक्तका प्रत्येक शब्द और वाक्य कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये इसकी सूचना देता है । पाठक प्रथम मंत्रसे इस विषयका उपदेश देखें ।

[५] (६२३) (वाजिनीवती चित्रामघा) बल-वर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशे) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामिनी है । (ऋषिष्टुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छन्ती) प्रकाशित होती है ।

स्त्रीका अधिकार

१ यह उषा **सूर्यस्य योषा** (सूर्यकी स्त्री है । **वाजि-**

६ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ६२४
७ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि ददद्रुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ६२५

मीवती चित्रामघा) अनेक प्रकारके अन्न तथा धन अपने पास रखती है, (वसूनां रायः ईशे) धनों और वैभवोंका ईशन करती है । स्वामिनी होकर उन सब ऐश्वर्योंका शासन करती है ।

स्त्री अबला नहीं है ।

२ ऐसी स्त्रीकी प्रशंसा (ऋषि स्तुता) ऋषि करते हैं । जो स्त्री अपने संपूर्ण ऐश्वर्यका योग्य रीतिसे प्रशासन करती है, उसकी प्रशंसा ऋषि करते हैं ।

स्त्री प्रशासिका है ।

३ मघोनि वसूनां ईशे—स्वयं अपने पास धन रखती है और सब प्रकारके धनोंपर स्वामित्व करती है । पूर्व मंत्रमें कहा ही है कि यह (भुवनस्य पत्नी) राष्ट्रका, भुवनका पालन करती है । जिस तरह पुरुषको राष्ट्रपति, भुवनपति कहते हैं, उसी तरह शासक स्त्री होने पर उसको ' राष्ट्रपत्नी, भुवन पत्नी ' कहा जाता है । यहां का ' पत्नी ' पद धर्मपत्नी वाचक नहीं है, प्रत्युत ' पालिका ' का भाव बतानेवाला है ।

४ उषाः वह्निभिः गृणाना उच्छन्ती—उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर प्रकाशती है । इसी तरह स्त्री अग्निके समान तेजस्वी नेताओंके साथ प्रशासन कार्य करती हुई प्रकाशित होती है । स्वयं सूर्यकी पत्नी उषा अग्नियोंके साथ कार्य करती है । इसी तरह राष्ट्रका शासन करनेवाली राणी अन्यान्य अधिकारियोंके साथ राष्ट्रशासनका कार्य उत्तम रीतिसे करे और अपना तेज फैलाये ।

यहां सूचित किया है कि जैसा अग्नि सूर्यकी प्रभाका धर्षण नहीं कर सकते, उसी तरह यह सम्राज्ञी अन्यान्य कार्यकर्ताओंके साथ रह कर भी किसी तरह दूषित नहीं होती ।

[६] (६२४) (**द्युतानां उषसं वहन्तः**) **तेजस्वीनी उषाको ले जानेवाले (अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रति अदृश्रन्) विलक्षण तेजस्वी घोडे दिखाई देते हैं । वह (शुभ्रा) गौरवर्ण उषा (विश्वपिशा रथेन याति) सब प्रकारसे सुन्दर रथसे जाती है । यह (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्योंको रत्न अथवा धन देती है ।**

स्त्री रथमें बैठकर जाती है । गोषा नहीं है ।

१ द्युतानां उषसं वहन्तः अरुषासः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्—प्रकाशमान उषाके रथको तेजस्वी घोडे चला रहे हैं यह दृश्य दीख रहा है । सूर्यकिरणरूपी घोडे उषाके रथको चलाते हैं । यहां उषा रथमें बैठकर भ्रमण करनेके लिये जाती है । वह घरमें गोषामें नहीं बैठती । वह विश्वमें भ्रमण करती है । स्त्रियां इस तरह भ्रमण करें, राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध होना चाहिये जिससे स्त्रियां निर्भय होकर राष्ट्रमें संचार करें । दुष्ट उनका धर्षण करनेमें समर्थ न हों ।

२ अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्-तेजस्वी घोडे दीखाई देते हैं । रथके घोडे उत्तम तेजस्वी, फुर्तिले और शीघ्रगामी हों ।

३ ऐसे सुंदर तेजस्वी रथमें बैठकर (**शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति**) गौरवर्ण स्त्री-राष्ट्रका प्रशासन करनेवाली रानी-राष्ट्रमें संचार करती है ।

४ विधते जनाय रत्नं दधाति—विशेष उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको वह धन देती है । उत्तम कुशल कारीगरको वह धन देती है । राष्ट्रके उत्तम कारीगरोंको इस तरह उत्तेजना मिलनी चाहिये ।

[७] (६२५) (**सत्या महती यजता देवी**) **सत्य बडी पूजनीय यह उषा देवी (सत्येभिः महद्भिः यजत्रैः देवेभिः) सत्य महान पूजनीय देवोंके साथ रहकर (दृळ्हानि रुजत्) घने अन्धकारका नाश करती है, (उस्रियाणां ददत्) गौओंके लिये प्रकाश देती है, इस कारण (गावः**

८ नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६२६

(७६) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। उषसः। त्रिष्टुप्।

१ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ६२७

उषसं प्रति वावशंत) गौवें उषाकी कामना करती हैं।

१ देवी देवेभिः दळहा रुजत्— देवी देवोंके साथ रहकर सुदृढ शत्रुओंका नाश करती है। यह मंत्र शक्तिका महात्म्य कह रहा है। शक्तिका महत्त्व यह है कि वह सुदृढ शत्रुओंका भी नाश करती है।

२ सत्या सत्येभिः दळहा रुजत्— सत्यपालन करनेवाली वीरा सत्यपालक वीरोंके साथ रहकर सुदृढ बने। वह असत्य व्यवहार करनेवालोंका नाश करती है।

३ उस्त्रियाणां ददत्— गौओंको घास आदि देती है। इसलिये (गावः उषसं वावशंत) गौवें उषाको चाहती है। वैसी गौवें घास पानी समयपर देनेवाली स्त्रीको चाहती है।

इस सूक्तमें ' दुहिता ' पद है। (दिवः दुहिता) यह उषा द्युलोककी दुहिता है। ' दुहिता ' का अर्थ (दोग्धी) गौका दूध निचोडनेवाली है। घरकी पुत्री सवेरे उठे, गौओंको घास पानी आदि देवे, गौओंका प्रेम संपादन करे और गौओंका दूध निकाले। गौओंका दोहन करना यह कार्य घरकी पुत्रीका है, स्त्रीका है।

[८] (६२६) हे (उषः) उषा देवि ! (नु अस्मे) हमें, प्रत्येकके लिये (गोमत् अश्वावत् वीरवत् रत्नं) गौवों, अश्वों और वीर पुत्रोंसे युक्त धन और (पुरुभोजः धेहि) बहुत भोजन सामग्री दो। (नः बर्हिः पुरुषता निदे मा कः) हमारा यज्ञ मानवोंके समाजमें निन्दाके योग्य न होवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखो।

१ गोमत् अश्वावत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि— जिसके साथ गौवें, घोडे, वीर पुत्र और बहुत भोग सदा रहते हैं ऐसा धन हमें चाहिये। खानेके लिये गौका दूध, दही, मक्खन और घी जितना चाहिये उतना मिले, भ्रमण करने तथा रथ चलानेके लिये उत्तम घोडे हों, भोजनके लिये उत्तम अन्न मिले, पर्याप्त धन हो, इस सबका संरक्षण करनेके लिये वीर हों तथा घरमें वीर पुत्र हों। पुत्रिकाएं भी वीरा हों। यह वैभव हमें चाहिये।

२ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— मानव समाजमें हमारे कर्मोंकी निंदा न हो। हमारे कर्मकी प्रशंसा ही सब करें। ऐसे शुभ कर्म सदा हमसे होते रहें। ' पुरुष-ता ' मानवताकी दृष्टिसे हमारे कर्म श्रेष्ठमें श्रेष्ठ हों। हमारे कर्मोंसे मनवताकी ऊंचाई बढे।

[१] (६२७) (अमृतं विश्वजन्यं ज्योतिः) अमर और सबके हितकारी तेजका (विश्वानरः सविता देवः उत् अश्रेत्) विश्वके नेता सविता देवने आश्रय किया है। वह (देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट) देवोंका आंख सूर्य शुभ कर्मके साथ उदय हुआ है। और (उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः) उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है।

१ विश्वानरः सविता देवः विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः उत् अश्रेत्— विश्वका नेता, सबको चलानेवाला, प्रेरक देव सर्व जनहितकारी अमर तेजका आश्रय करता है। जो (विश्वा-नरः) सबका नेता, सब जनताको चलानेवाला है, वह (सविता) सबका प्रेरक बने, सबको शुभ कर्मकी प्रेरणा करे, (देवः) प्रकाशमान हो, विजिगीषु हो, कर्तव्य दक्ष हो, और (विश्व-जन्यं) सर्व जनोंके हित करनेवाले अमर तेजका धारण करे।

सविता सूर्य देवका (ज्योतिः) प्रकाश (विश्व-जन्यं अमृतं) सब प्राणियों, सब वृक्षादिकोंका हित करनेवाला है।

२ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ६२८

तथा मरणको दूर करनेवाला है। सूर्य प्रकाश रोग बीजोंको दूर करता है, आरोग्य बढता है, अपमृत्युको दूर करता है। सूर्य स्थावर जंगमका आत्मा है (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।** ऋ० १।११५।१)ऐसा इसीलिये वेदमें अन्यत्र कहा है। इस तरह सूर्य प्रकाश सर्व जनोंका हितकारी है।

१ देवानां चक्षुः कृत्वा अजनिष्ट—यह सूर्य देव सबका आंख है, सब विश्वका चक्षु है। सूर्यके प्रकाशसे ही सब कुछ प्रकाशित होता है। सूर्यके प्रकाशसे सबके आंख कार्य करते हैं। इसलिये इसको (**चक्षुषः चक्षुः** । केन उ०) सबकी आंखका आंख कहते है। यह (क्रत्वा) कर्मके साथ उदय होता है। अर्थात् सूर्यका उदय होनेपर ही यज्ञ, याग आदि शुभ कर्म किये जाते हैं इसलिये इसको सत्कर्मके साथ जन्मा है ऐसा कहा है। मनुष्यको उचित है कि वह जन्मसे ही सत्कर्म करे और दूसरोंको भी सत्कर्ममें प्रेरित करे।

३ उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः—उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया। उषाके प्रकाशसे सब विश्व दिखने लगा है। इसी तरह स्त्रियां भी स्वयं ज्ञान-तेजसे तेजस्विनी बनें और अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानवान् बनावें तथा सबको प्रकाशित करनेका श्रेय लें।

सूर्य और उषा ये दोनों स्वयं तेजस्वी होती हैं और सब विश्वको तेजस्वी बनाती और प्रकाशित करती हैं। मनुष्योंको भी ऐसा ही करना चाहिये। सूर्य मनुष्योंका आदर्श है और उषा सब स्त्रियोंका आदर्श है। अपने आदर्शके समान सबको बनना उचित हैं।

[२] (६२८) ' अमर्धन्तः वसुभिः इष्कृतासः) हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (*देवयानाः पन्थाः*) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं। मुझे दिखाई दे रहे हैं। (*पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ*) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज-प्रकाश-फहरने लगा है। और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (*हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्*) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है।

१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त—दिव्य मार्ग हिंसासे रहित हुए हैं। उषा आनेके पूर्व चारों ओर अन्धेरा था, इस लिये चोर, डाकू, लुटेरे घात पात करते थे, अब उषा आ गयी, प्रकाश हुआ, इसलिये वे हिंसक भाग गये और सब मार्ग निष्कंटक हुए।

२ देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः—देवोंके जाने आनेके मार्ग, श्रेष्ठ मार्ग धनोंसे भरपूर हुए हैं। क्योंकि अब प्रकाश हुआ, चोरोंका भय रहा नहीं, इसलिये उद्यमी लोग धन लेकर अपने व्यवहार करनेके लिये जा रहे हैं। अतः उषा आनेके पश्चात् सब मार्ग धन-संपन्न हुए है जो उषाके पहिले धन शून्य थे।

३ देवयानाः पन्थाः प्र अदृश्रन्—दिव्य मार्ग उषाके प्रकाशसे दीखने लगे हैं। जो उषाके पूर्व अन्धेरेसे व्याप्त थे।

भगवा ध्वज

४ पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्—पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है। उषाका ध्वज उषःप्रकाश है। यह ध्वज भगवा है, गेरुवा है। उषाका प्रकाश ही यह ध्वज है। इस ध्वजसे पता लगता है कि सूर्य आ रहा है।

५ प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्—पूर्व दिशासे उगनेवाली उषा बडे बडे प्रासादोंके ऊपर अपना तेज डालती हुई आ रही है। *उषाका प्रकाश सबसे प्रथम ऊंचे स्थानोंपर चमकता है*, पहाडोंके शिखर, ऊंचे मकानोंके ऊपरके भाग, ऊंचे वृक्षोंके ऊपरके भाग सबसे प्रथम प्रकाशित होते हैं।

राज-प्रासाद

यहां ' **हर्म्य** ' शब्द है, यह राजमहलका वाचक है। जो घर पाच पांच सात सात मंजलोंके होते हैं उनका नाम हर्म्य होता है। राजाओं तथा धनिकोंके घर ऐसे बडे होते हैं। और उनके शिखर सबसे प्रथम उषाके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। जिनका विचार यह है कि वेदके समय झोंपडियां ही रहनेके लिये होती थीं, उनके अशुद्ध मतका निराकरण यह ' हर्म्य ' शब्द कर रहा है और यह शब्द बता रहा है कि उस सभ्यताके समय बडे बडे प्रासाद होते थे जिनमें राजा, राजपुरुष तथा धनी लोग रहते थे।

३ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ६२९
४ त इद् देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ६३०

[३] (६२९) हे (उषः) उषा देवी! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे। अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है। (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती।

सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन

१ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्—सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित हुए बहुत दिन हैं। प्रथम बहुत दिन उषा प्रकाशित होती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। सूर्य उदय होने पूर्व उषाके कई दिन जाते हैं। ये दिन उषाके न्यूनाधिक प्रकाशसे समझे जाते हैं। (बहुलानि अहानि) बहुत दिन उषा प्रकाश रही है, और पश्चात् सूर्यका उदय हुआ है, ऐसी परिस्थिति भारत वर्षमें कदापि नहीं होती है। उत्तरीय ध्रुवके भागमें तीस दिन तक उषा प्रकाशती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। यह परिस्थिति वहां है। भारत वर्षका कोई कवि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन गये ऐसा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वैसा दृश्य यहां नहीं है। हां जो कवि भारत वर्ष तथा उत्तरीय ध्रुवकी परिस्थिति स्वयं जानता हो वही अपने काव्यमें ऐसा कह सकता है कि इस स्थानमें सूर्य उदयके पूर्व उषा देवी बहुत दीन (बहुलानि अहानि) प्रकाशित होती है। इस मंत्रका विचार पाठक करें और जाने कि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन प्रकाशित होनेका आशय क्या है।

२ उषा जारः इव पर्याचरन्ती--उषा जारकी सेवा करनेके समान सूर्य-पतिकी सेवा करती है। यहां के 'जार' का अर्थ 'पति' ऐसा सबने किया है, क्योंकि सूर्य उषाका पति है। इसमें संदेह नहीं है। यह भी पतित्व आलंकारिक है। पर हमारे विचारसे यहांका 'जार' पद 'जार' का ही वाचक है। क्योंकि (१) '**साध्वी स्त्री**' पतिकी सेवा करती है, (२) '**जारिणी स्त्री**' जारकी सेवा करती है और (३) '**यती संन्यासिनी**' विरक्त संसारसे उदास बनी स्त्री पतिसेवासे विमुख होती है। इन तीन स्त्रियोंमें जारिणि स्त्री की आतुरता अधिक होती है, तथा वह अधिक तत्परतासे जारकी सेवा करती है। यहां उषा अधिक तत्पर है यह बताया है, इसलिये 'जार' शब्दका प्रयोग यहां किया है। इसलिये इसका यह अर्थ करना योग्य है। तथापि सब भाष्यकारोंने इसका अर्थ साध्वी स्त्री पतिकी सेवा करती है वैसी उषा है ऐसा अर्थ किया है। हम भी इसका खंडन करना नहीं चाहते।

३ यती इव न—'यती' का अर्थ संयमशील संन्यासिनी है। संसारसे विरक्त हुई स्त्री संसारमें रही तो भी वह संसारके कार्योंमें तत्पर नहीं रहती। वैसी उषा नहीं है, उषा अत्यंत तत्परतासे पति सेवा करती है। सब स्त्रिया तत्परतासे पति सेवा करें यह उपदेश यहां है। कोई स्त्री संन्यासिनी न बने, संसारमें रहकर तत्परतासे पति सेवा करे, दक्षतासे संसारके कर्म करती रहे।

[४] (६३०) जो (ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्य-मन्त्राः पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोमरसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविन्दन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषसं अजनयन्) उषाको प्रकट किया।

यह प्राचीन ऋषियोंका वर्णन है। (पूर्व्यासः) पूर्व समयके (कवयः) कवि (ऋतावानः) सत्यका पालन करते थे, वे

५ समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ६३१

६ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ६३२

(सत्य-मन्त्राः) मन्त्रोंका साक्षात्कार करते थे तथा (पितरः) सबके पूर्वज तथा पालक थे, (देवानां सधमादः) देवोंके साथ साथ बैठकर सोमरस पीकर आनंदित होनेवाले थे, अर्थात् देवोंकी पंक्तिमें बैठनेका जिनका अधिकार था ऐसे अंगिरस ऋषि थे। इन ऋषियोंने (गूळ्हं ज्योतिः) अन्धेरेमें गुप्त हुआ सूर्यका प्रकाश फलाने स्थानसे प्रकट होगा, ऐसा ज्योतिर्विद्यासे कहा और वैसा ही हुआ। उनके कहनेके अनुसार उषा प्रकट हुई और पश्चात् सूर्य भी प्रकट हुआ। ये प्राचीन ऋषि अंगिरस थे, अत्रि कुलके भी थे। ज्योतिष विद्यासे वे जान सकते थे कि दीर्घ कालके पश्चात् फलाने दिन प्रथम उषाका प्रादुर्भाव होगा और उसके पश्चात् उस दिन सूर्य प्रकट होगा। जैसा वे कहते थे वैसा ही होता था।

यह मंत्र वसिष्ठ ऋषिका देखा है और इसमें इनको 'पूर्व्यासः पितरः' कहा है।

[५] (६३१) (समाने ऊर्वे) एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि संगतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं।

यहां उन्नतिके छः नियम बताये हैं, जो वे प्राचीन कालके पूर्वज अंगिरस आदि ज्ञानी पालते थे, वे नियम ये हैं—

१ समाने ऊर्वे अधि संगतासः—एक महत्कार्य करनेके लिये आपसकी संघटना करना, आपसका विद्वेष हटाना और एक होना, एक अनुशासनमें रहना।

२ सं जानते—सबका एक विचार, एक संस्कार, एक मत करना, आपसमें मतभेद न रखना,

३ ते मिथः न यतन्ते—आपसमें विद्वेष बढे ऐसा यत्न कभी न करना, अपना संघटन टूट जाय ऐसा यत्न कभी न करना, परस्परका संघर्ष बढने न देना,

४ ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति—देवोंके अनुशासनोंको वे कभी तोडते नहीं, स्थायी नियमोंको वे कभी तोडते नहीं। अनुशासनोंका उत्तम पालन करना,

५ अमर्धन्तः—किसीकी हिंसा नहीं करना, दूसरोंको कष्ट न देना, ऐसा व्यवहार करना कि जिससे किसी दूसरेको कष्ट न पहुंचे,

६ वसुभिः यादमानाः—धनोंको प्राप्त करना, ये छः नियम हैं, इनको जो पालन करेंगे वे निःसंदेह अभ्युदयको प्राप्त कर सकते हैं। ये नियम अभ्युदय चाहनेवालोंको अपने ध्यानमें रखना उचित है।

[६] (६३२) हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं। (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो। हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो।

१ उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः स्तोमैः ईळते—प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिये। जो (वसिष्ठाः) निवास करनेवाले हैं, जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें और ईश्वरकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें।

२ गवां नेत्री वाज-पत्नी—गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली उषा है। उषःकालमें गौओंको

परीक्षा-विभाग

गुजरात, महाराष्ट्र, हैद्राबादराज्य मद्रासप्रान्त तथा धार (मालवा) के लिये—

३१ मार्च एवं १ एप्रिलको होनेवाली संस्कृतभाषा परीक्षाओंका कार्यक्रम निम्न प्रकारसे हैं—

शनिवार ३१ मार्च		रविवार १ एप्रिल	
१०॥ से १॥	२॥ से ५॥	१०॥ से १॥	२॥ से ५॥
विशारद-प्रश्न पत्र १	विशारद-प्रश्न पत्र २	विशारद-प्रश्न पत्र ३	विशारद-प्रश्न पत्र ४
×	परिचय-प्रश्न पत्र १	परिचय-प्रश्न पत्र २	परिचय प्रश्न पत्र ३
×	×	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र १	प्रवेशिका-प्रश्न पत्र २
×	×	प्रारंभिनी	×

आवश्यक सूचनायें

१– ३१ मार्च व १ एप्रिलकी परीक्षाओंके लिये आवेदन पत्र भरनेकी अन्तिम तिथि १५ फरवरीसे बढाकर २८ फरवरी कर दी है।

२– आवेदन पत्र आदि आवश्यक सामग्री केन्द्रव्यवस्थापकोंको एक मास पूर्वही केन्द्रमें मंगाकर रख लेनी चाहिये, जिससे यथा समय उनका उपयोग होसके।

(१) ३-४ फरवरीको होनेवाली परीक्षाओंका परिणाम २६ मार्चको प्रत्येक केन्द्रमें प्रकाशित हो जावेगा।
(२) परीक्षार्थियोंको चाहिये कि वे आपना परीक्षा परिणाम स्थानीय केन्द्रव्यवस्थापक द्वारा जान लें।
(३) केन्द्रव्यवस्थापक महानुभाव ता. २६ मार्चको ठीक प्रातः ८ बजे अपने केन्द्रोंमें परीक्षा-परिणाम प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करें।

Regd. No. B 1463

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)